UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180068

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83.1/J83B Accession No. 6.11.7.

Author जोशी, [illegible]

Title [illegible]

This book should be returned on or before the date last marked below.

ધર્મ

અને

માયા

शीराजी
चार के चार
पत्थर की आँख
फूलों की माला
बहता तिनका

ब्रह्म और माया

*****

कमल कपूरी

*****

शुभ्रा प्रकाशन जमशेदपुर

प्रथम संस्करण
दीपावली १९५६

प्रकाशक
शुभ्रा प्रकाशन
२६, कंट्राक्टर्स एरिया (वेस्ट)
जमशेदपुर

मुद्रक
ज्ञानेन्द्र शर्मा
जनवाणी प्रिण्टर्स एण्ड पब्लिशर्स प्राइवेट लि०
३६, वाराणसी घोष स्ट्रीट
कलकत्ता-७

आवरण
आनन्द महाजन

मूल्य : तीन रुपये

कस्तूरीमृग .. ७
ममता का बंधन .. २७
नायक-नायिका .. ४६
बेटे का बाप .. ६१
ब्रह्म और माया .. ७३
बैनिटी .. ९५
नर्स .. ११४
शीराज़ी .. १३५
कल्याणी .. १४७
चुटकुला .. १५७

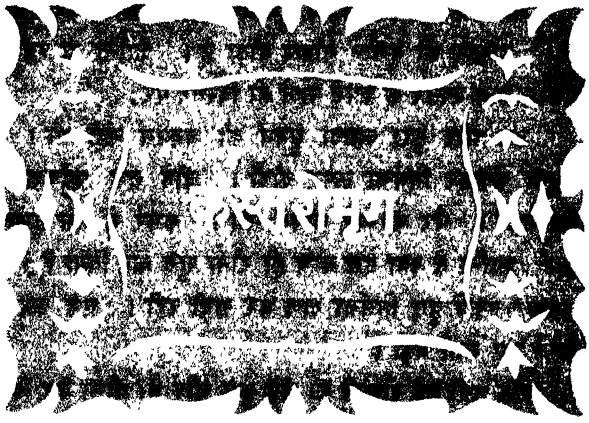

अभी-अभी शाम हुई है। जरा देर पहले ही रोशनी जलाकर कढ़ाई का एक नमूना लेकर बैठी थी। खबर सुनते ही हाथ में सुई चुभ गयी। क्षण भर में ही मुँह पीला पड़ गया। रुँधे हुए स्वर में निर्मला ने पूछा, 'क्या कहती हो? अभी कुछ देर पहले ही तो मैंने उसे ऊपर चढ़ते हुए देखा था।'

भाभी ने जवाब दिया, 'मैं खुद अपनी आँखों से देखकर अभी तो आ रही हूँ। डाक्टर को बुलाने नौकर दौड़ा है। शान्ति रो रही है। और प्रकाश बाबू दफ्तर के कपड़े पहने ही बिस्तर पर...'

अब और कुछ ज्यादा सुनने की जरूरत नहीं थी। कढ़ाई का नमूना फेंककर निर्मला ऊपर दौड़ी। जीने तक पहुँचकर आगे नहीं बढ़ सकी। पैर थर-थर काँपने लगे। कमरे में जैसे गुंजन दबा हुआ है। शान्ति ने क्या इस बीच ही रोना शुरू कर दिया है। रेलिंग को कसकर पकड़े हुए निर्मला क्षण भर खड़ी रही। एक कदम, दो कदम करते हुए आगे बढ़ी।

शेड लगी हुई रोशनी को जैसे कुछ और भी धीमा कर दिया गया है। पैरों के पास शान्ति बैठी हुई है; घूँघट खोले, गहरे लाल रंग की साड़ी पहने हुए है। और सामने डाक्टर साहब बैठे हुए हैं।

निर्मला चौखट पर खड़ी हो गयी। भीतर जाने के लिए पैर आगे नहीं बढ़े। दीर्घ, असहाय अँगुलियों से प्रकाश तकिये के पास जैसे कुछ खोज रहा है। श्वास-प्रश्वास के साथ-साथ पेट ऊपर-नीचे हो रहा है।

डाक्टर ने आखिरी बार इंजेक्शन दिया और निर्मला ने चौखट पर खड़े-खड़े ही जैसे साँस लेने में होनेवाली तकलीफ का शब्द सुना। धीरे-धीरे वह शब्द क्षीण हो गया। बस यही आखिरी बार है। निर्मला गिन रही है, अब तलपेट और ऊपर-नीचे नहीं होगा। नहीं, अब फिर ऊपर उठा। शब्द क्षीणतर है। तब यही अन्तिम है। अन्त, अन्त, अन्त नहीं, यह फिर ऊपर-नीचे हो रहा है। नदी किनारे खड़े होकर पानी के भीतर तैरनेवाले को देखने का जैसा यह निष्ठुर खेल निर्मला देख रही है। अब अन्त, अब अन्त करते हुए भी सात बार हो गया। और कितनी बार! आठ, आठ, आठ—यह नौ! स्विच आफ करा

पंखा आखिरी बार कब घूमेगा, यह देखने के लिए ही अपलक विवश कौतूहल से निर्मला देख रही है। दस। अब और सुनाई नहीं पड़ता, स्पन्दन खत्म हो रहा है। ग्यारह में ही खत्म! निर्मला का ख्याल था कि वह कम-से-कम पन्द्रह तक गिन सकेगी। लेकिन यह नहीं हुआ। ग्यारह में ही सारा खेल खत्म हो गया!

जरा देर पहले वह क्यों नहीं आयी, जरा देर पहले से ही उसने गिनना शुरू क्यों नहीं किया, तब वह काफी ज्यादा गिन सकती थी। पन्द्रह क्यों, पचास तक।

हृदय से जैसे कोई भारी-सी चीज निकलकर गले में आ अटकी। क्या इसी का नाम रोना है? यह रोना क्या प्रकाश के खत्म हो जाने के लिए है, या पन्द्रह तक नहीं गिन सकने के कारण?

आकाश की बची-खुची नीलिमा को पोंछते हुए जैसे संध्या आती है, वैसे ही प्रकाश की आँखें झपक गयीं।

चौखट को कसकर पकड़े हुए निर्मला खड़ी रही। गले में स्टेथस्कोप डालते हुए डाक्टर साहब उठे, 'मैं और क्या कर सकता था। सेरिब्रल हेमरेज!' कुछ स्वगत और कुछ निर्मला को सुनाते हुए डाक्टर साहब ने जैसे अपनी सफाई दी।

पछाड़ खाकर शान्ति गिर पड़ी। मौसी अभी तक सिरहाने खड़ी पंखा झल रही थीं। उन्होंने एक हाथ से अपने आँसू पोंछे और दूसरा हाथ शान्ति की पीठ पर सान्त्वना के रूप में रखा। शान्ति फूट-फूटकर रो रही है।

धीरे-धीरे भीड़ बढ़ रही है। पास-पड़ोस और मुहल्लेवाले आ रहे हैं। सीढ़ियों पर जूतों की आवाज सुनाई देती है। अब नीचे से निर्मला की बीमार भाभी भी ऊपर आ गयी है।

'बाप को खबर भेज दी गई है?' भीड़ में से किसी एक ने पूछा।

'अभी थोड़ी देर पहले ही तो तार दिया है। कल सुबह तक आ जायँगे। और अब आना या न आना एक बराबर है।' दीर्घ श्वास छोड़ते हुए मौसी ने कहा।

धीरे-धीरे निर्मला नीचे उतर आयी। अन्य आगन्तुकों की तरह शोक से अभिभूत हो वह तो विलाप नहीं कर सकती। शान्ति की आवाज क्रमशः तेज होती जा रही है। पागलों की तरह वह बार-बार अपना माथा फोड़ रही है। तीन अधेड़ महिलाएँ उसे पकड़े हुई हैं, फिर भी वे उसे संभाल नहीं पातीं। शान्ति के साथ-साथ अब मौसी ने भी सुर मिलाना शुरू कर दिया है; धीरे-धीरे रह-रहकर एक ही तरह से सुबक-सुबक कर। खबर मिलते ही एक-एक कर और भी अनेक नाते-रिश्तेदार आ रहे हैं और आते ही रोने-धोने में शरीक हो जाते हैं। मूल गायन में अवश्य शान्ति ही है।

आज का दिन तो शान्ति का ही है। किसी का भाई गया, किसी का काका और किसी का मामा। पर शान्ति का तो सर्वस्व चला गया।

और इस विगलित तुषार-प्रवाह में निर्मला पत्थर की तरह अचल है। रह-रहकर आँखों की पलकें भींग जाती हैं। यदि संभव होता, तो शायद वह भी शान्ति की तरह बेचैन और व्याकुल हो जमीन पर लोट जाती। पर उपाय नहीं है। आज के शोक का सारा अधिकार सुरक्षित रखने के लिए, आँसू बहाने के लिए अन्य नाते-रिश्तेदार हैं। निर्मला के हिस्से में सिर्फ शून्य है।

निर्मला स्वयं को किस कठिन प्रयास से रोके हुए है, यह वह ही जानती है। शायद यह संयम वैधव्य से भी ज्यादा कठोर है।

नीचे आने पर भी शान्ति नहीं। ऊपर का कोलाहल क्रमशः बढ़ रहा है। सड़क की तरफ की रेलिंग पकड़े हुए निर्मला बहुत देर तक खड़ी रही। कोई भी काम करने को उसका जी नहीं होता। आज किसी भी बात में उसका मन नहीं है।

अब धीरे-धीरे छात्रों की टोली आ रही है। अपने प्रिय प्रोफेसर के वे अन्तिम बार दर्शन करेंगे। फूलों के हार भी आये हैं। एक खटिया भी आ गयी। उस खटिया पर ही क्या प्रकाश को ले जायेंगे—फूलों के हार और इन मालाओं से ढँककर? दाह-संस्कार के पहले पुष्प-समाधि! निर्मला से यह सब किसी भी तरह नहीं देखा जा सकेगा।

प्रकाश के अनेक मित्र भी आये हैं। कालेज के सहकर्मी सिर झुकाये मकान के आगे सड़क पर चहलकदमी कर रहे हैं। धीमे स्वर में मृत व्यक्ति के सैकड़ों गुणों का आपस में बखान कर रहे हैं। लाश की चीर-फाड़ की तरह गुणों का पोस्टमार्टम हो रहा है।

और इस सारे कोलाहल को भेदती हुई, सब से ऊँची क्रन्दन-ध्वनि शान्ति की ही है। कोई बाधा नहीं मानती, कुछ खयाल नहीं है अथवा गृहिणी-सुलभ नम्रता। लेकिन जिसका घर ही लुट गया, वह फिर गृहिणी कैसी?

उसका विलाप साफ-साफ समझ में नहीं आता। समझने की चेष्टा करने लायक मन की अवस्था भी नहीं है। शायद सुखी विवाहित जीवन की जरा-जरा-सी और छोटी-मोटी घटनाओं का उल्लेख कर रही है, जिसका सारांश यह है कि प्रकाश उसे कितना चाहता था। दाम्पत्य जीवन की जो सब मामूली और छोटी-मोटी बातें पहले किसी से कहना तो दूर रहा, अवसर के क्षणों में स्वयं कल्पना करके शान्ति लजा जाती—अब वे सब बातें ही अपने आप दूसरों को सुनाते हुए उसे कोई संकोच नहीं है।

सिसकियाँ भरकर रोते हुए, धुएँ की तरह बार-बार यह कहती है, 'हाय रे, मैं तो लुट गयी! हे भगवान, मेरा ऐसा सर्वनाश क्यों किया?'

अब शायद निर्मला अपने आँसुओं को ज्यादा देर तक नहीं रोक सकेगी। हृदय का समस्त आलोड़न आँखों में आ समाया है।

अपने पीछे किसी के पैरों की आहट सुनकर निर्मला ने सिर घुमाया। उसकी भाभी। इतनी देर बाद नीचे उतरकर आयी हैं। दबी हुई आवाज में बोलीं, 'खाना-वाना कुछ बनाया है, बीबीजी?'

उत्तर देने के लिए निर्मला के मुँह से आवाज नहीं निकली। सिर हिलाकर बताया, नहीं।

'क्यों? थोड़ी देर में तुम्हारे भैया आनेवाले होंगे। और बाल-बच्चों को ही मैं क्या दूँगी? अरे, तुम्हारी आँखें इतनी लाल क्यों हैं? तुम भी रो रही थीं?' जरा दम लेकर भाभी ने फिर कहा, 'तुमने तो हद कर दी। दुःख क्या हमें नहीं हुआ है, भरी जवानी में ऐसा अच्छा आदमी चल बसा! लेकिन इसमें इतने रोने की क्या जरूरत?'

बिना कोई जवाब दिये निर्मला ने मुँह फेर लिया। व्यर्थ है। ये नहीं समझेंगी। और ठीक ही तो है। ऊपर की मंजिल में रहनेवाले एक सज्जन मर गये। लोक-लाज और दिखावे के लिए जरा आँसू बहाये जा सकते हैं; आह, उफ़ या सहानुभूति प्रकट की जा सकती है। लेकिन सिर्फ इसी कारण नीचे की मंजिल में रहनेवाले आँसू बहायेंगे, अपना चूल्हा नहीं जलायेंगे—यह कैसी बात!

निर्मला रसोई में चली गयी। सूखी लकड़ियों पर जरा-सा मिट्टी का तेल डालकर दियासलाई लगाते ही आग भभक उठी। लपटों की ओर एकटक देखते ही निर्मला की आँखों में आँसू भर आये। आने दो, अब इन्हें पोंछने की जरूरत नहीं है। यहाँ कौन देखेगा? देखेगा भी तो कारण मालूम नहीं होगा। चूल्हा फूँकने से भी तो आँखें जलती हैं, आँसू आ जाते हैं।

'रामनाम सत्य है' की ज़ोरदार आवाज़ आई। ओ, अब शायद प्रकाश के शव को नीचे ला रहे हैं। वह भी जाय और अन्तिम बार देख ले। शान्ति की चीख-चिल्लाहट इस समय बहुत तेज हो गयी है। ऊपर

पैरों की आहट हो रही है। शान्ति अपना हाथ छुड़ाना चाहती है, 'मुझे छोड़ दो, छोड़ दो, मैं भी साथ जाऊँगी।'

आश्चर्य, निर्मला को उस समय शान्ति पर बहुत क्रोध आया। इस युवती के गगनभेदी विलाप में अतल शोक की गम्भीरता नहीं है, आत्म-प्रचार का विस्तार है। 'हाय, मैं तो लुट गयी! हे भगवान, मेरा ऐसा सर्वनाश क्यों किया?' बार-बार यह दोहराकर शायद वह बताना चाहती है कि जो गया, वह उसी का था—सिर्फ उसी का, एकमात्र उसी का।

आज का यह इतना अश्रुपात, यह सिर्फ़ प्रकाश के लिए ही नहीं, जो अब अतीत हो चुका है; बल्कि शान्ति के लिए भी, जिसके धधकते हुए वर्तमान के बाद अब सिर्फ प्रज्वलन्त भविष्य बचा है। इस दुखान्त नाटक की नायिका शान्ति ही है। कम-से-कम इस समय तो उपस्थित व्यक्तियों के तप्त श्वासों की समवेदना ने शान्ति के चारों ओर एक ज्योतिर्लोक की रचना कर दी है। सहस्र जिह्वा शिखाग्नि के बीच खड़ी हो सर्वस्व गँवा देने के महत्व से शान्ति गौरान्वित हो गयी है।

और वह? चूल्हे पर चढ़ी हुई पतीली की ओर देखकर एक रिक्त अनुभूति से निर्मला का सारा शरीर काँप उठा। उसकी बात कोई नहीं जानेगा। वह किसी को बता भी नहीं सकेगी। मुँह के बल ज़मीन में गिरने पर भी उसे अकेले ही आघात का बोझ सहना पड़ेगा।

यही तो जीवन है। यह तेज, आभा और चमक, सब कुछ एकमात्र फूँक के भरोसे पर हैं। नहीं तो आज भी प्रकाश ठीक समय पर ही कालेज से लौटा था। जीने पर चढ़ते समय निर्मला से आँखें चार होते ही ज़रा मुस्कुराया था।

वह मनुष्य ही, कौन जानता था, आध घंटे के भीतर ही भीतर अस्वस्थ हो जायगा और फिर घंटे भर में ही सारा खेल खत्म हो जायगा।

तर्जनी के अग्रभाग से फर्श की धूल पर निर्मला ने लिखा—
'प्रकाश. . .'

जिस दिन प्रकाश से प्रथम परिचय हुआ था, उस दिन की याद है। इस मकान में आते ही दोपहर को प्रायः तीन-चार बजे वह शान्ति से मिलने गयी थी। ऊपर की मंज़िल के किरायेदार से मेल-मिलाप कर लेना अच्छा ही है। मुलाकात करने पर मालूम हुआ कि एकदम अपरिचित नहीं है। बातों ही बातों में प्रकाश का परिचय भी निकल आया। दीवार पर टंगी हुई एक तस्वीर भी निर्मला ने देखी। यह तस्वीर उसने अपनी ससुराल में भी देखी थी, फौरन याद आ गयी।

दरवाजे की ओर पीठ किये वह गप्पें लड़ा रही थी। पीछे की ओर से पैरों की आहट होते ही उसने अपना सिर ढँक लिया था। शायद थोड़ा घूँघट भी काढ़ लिया था।

शान्ति ने दरवाजे की ओर देखते हुए कहा, 'आओ, अन्दर आ जाओ।' फिर निर्मला से बोली, 'अरे, आप इतनी क्यों शर्मा रही हैं? अभी तो कह रही थीं कि बहुत अच्छे आदमी हैं, रिश्ते में देवर लगते हैं। जाने-पहचाने आदमी से इतनी शर्म की क्या जरूरत?'

इतना कहने के बाद शान्ति ने परिचय दिया, 'मुलतान के खन्ना परिवार की हैं। रिश्ते में तुम्हारी भाभी लगती हैं, क्यों?'

निर्मला ने मृदु स्वर में कहा, 'जब आप कालेज में पढ़ते थे, तब देखा था लालाजी। शायद आपको याद नहीं। इसके बाद फिर आप इधर नहीं आये और मेरी भी किस्मत फूट गयी, तो मैं अपने मैके चली आयी।'

अब तक शायद प्रकाश की नजर नहीं पड़ी थी। किस्मत फूटने के इशारे से खयाल हुआ। करुणा-स्निग्ध दृष्टि से उसने निर्मला के नंगे हाथ और रूखे बालों के बीच सफेद माँग देखी।

शान्ति की ओर देखते हुए निर्मला कह रही थी, 'हमारी ससुराल की बैठक में ही इन सब लोगों का जमघट होता था। सारी दोपहरी ताश और शतरंज की धूम मची रहती थी। इनकी ननिहाल हमारे मकान के बिल्कुल बगल में ही थी। बैठक में ये सब लोग ऐसा शोर मचाते थे कि कुछ न पूछो, और हम लस्सी की फरमाइश पूरी करते थे। तब इनके बारे में अकसर सुनती थी।'

प्रकाश कोट उतार रहा था। पूछा, 'अकसर सुनती थी? क्या?'

'आपकी बड़ाई, और क्या। सुनती थी कि बहुत मेधावी छात्र हैं। हम भले ही अपढ़ हों, पर पढ़ाई-लिखाई का आदर तो करते हैं।' प्रकाश के खिले हुए चेहरे की ओर देखते हुए निर्मला कहती गयी, 'मैट्रिक और एफ० ए० में आपको सरकारी वजीफ़ा मिला, बी० ए० और एम० ए० में फर्स्ट क्लास और सोने का तगमा। फिर यह भी सुना था कि कालेज़ में प्रोफेसर हो गये हैं। लेकिन प्रोफेसर होने के बाद आप फिर अपनी ननिहाल नहीं आये।'

अपनी पत्नी की ओर मुखातिब हो प्रकाश ने कहा था, 'तारीफ़ ज़रा ध्यान से सुन लो। इससे तुम्हारी पति-भक्ति बढ़ेगी।'

निर्मला खड़ी हो गयी थी, 'अच्छा अब मैं चलूँ। सारा काम बाकी पड़ा हुआ है, अभी कुछ भी तो नहीं किया है। आप बैठिये। अच्छा लालाजी, नमस्ते।'

'नमस्ते।' प्रकाश ने कहा, 'पर अभी तक तो मैंने असली बात पूछी ही नहीं, यहाँ कैसे...'

'क्यों आयी हूँ, यही न? आप तो जानते हैं, देश के बँटवारे की वजह से हमें भी यहाँ आना पड़ा।'

इसके बाद निर्मला की ओर से शान्ति ने ही व्याख्या की, 'ये लोग अभी कुछ दिनों पहले ही नीचे की मंजिल में आये हैं।'

'नीचे की मंजिल में? नीचे भला कमरे कहाँ हैं? वह तो गोदाम है। वहाँ की गरमी म तो लोहा भी पिघल जायगा, आदमी की कौन कहे।' प्रकाश ने कहा था।

निर्मला ने हँसते हुए जवाब दिया था, 'पाकिस्तान से जो आए हैं, वे कहीं भी मज़े में रह सकते हैं। विधवा होकर अपने मैके चली गई थी, यह तो सुन ही लिया। वहाँ भी माँ को छोड़कर कोई ऐसा अपना नहीं था। पिताजी तो पहले ही मर चुके थे, कुछ बरसों पहले माँ भी चल बसी। अब मौसेरे भाई का आश्रय लिया है। उन्हींके साथ इधर-उधर भटकती हुई आयी हूँ। आप आइयेगा, भैया से परिचय करा दूँगी।'

प्रकाश की सज्जनता का क्या कहना। दूसरे ही दिन कालेज जाते समय निर्मला के भाई से मिलने चला आया।

निर्मला के भाई ने कहा, 'मेरा नाम रामप्रसाद अरोड़ा है। देश में थोड़ी-बहुत जमीन थी, कचहरी के पास एक होटल भी था। वह सब छोड़कर यहाँ आना पड़ा। बाल-बच्चेदार आदमी हूँ। एक तो वैसे ही मुसीबत का पहाड़ टूट पड़ा है, और ऊपर से एक विधवा बहन भी सिर पर आ पड़ी है। जीना मुहाल है, आप ही कहिए।'

'इसमें क्या शक है।' सहानुभूति के स्वर में प्रकाश ने कहा था।

'सरकार से नाममात्र के लिए थोड़ी-सी ग्रान्ट मिल जाती थी। सुना है, अब वह भी बन्द हो जायगी। यहाँ एक होटल खोलना चाहता हूँ। आपकी निगाह में कोई अच्छी-सी चालू जगह है क्या?'

किवाड़ के पीछे खड़ी निर्मला सब सुन रही थी। मन-ही-मन हँस रही थी। उसने सुना था कि प्रकाश को आजकल कालेज में दो शिफ्टों में पढ़ाना पड़ता है। यूनिवर्सिटी में भी सप्ताह में दो बार एक-एक घंटे के लिए जाना पड़ता है। होटल के लायक जगह खोजने के लिए भैया ने बहुत अच्छा आदमी चुना है।

धारावाहिक रूप में याद नहीं है। एक-दो, एक-दो असंबद्ध स्मृतियों के टुकड़े व्याकुल चेतना की हवा में उड़ रहे हैं।

निर्मला को याद है, बहुत दिनों बाद बातों ही बातों में एक रोज प्रकाश ने बताया था, प्रथम दर्शन में ही निर्मला उसे बहुत अच्छी लगी थी। अच्छा लगा था कष्टों से तपा हुआ उसका शुभ्र वैधव्य, सरल और स्वाधीन व्यक्तित्व, बातें करने की परिमित और संयत भंगिमा। लेकिन जिस चीज से प्रकाश सबसे अधिक प्रभावित हुआ था, वह थी उसकी दृष्टि की उदासीन सुदूरता।

बातें बनाकर कहना वह नहीं जानता था, इसलिए ये दो-चार बातें कहते हुए ही प्रकाश कुछ शर्मा-सा गया था।

शान्ति से गप्पें लड़ाने के लिए प्रायः दोपहर को वह ऊपर पहुँच जाती थी। करीब चार बजे प्रकाश आता था और उसके आने के साथ-साथ ही निर्मला फौरन उठ जाती थी। लेकिन नीचे नहीं आ पाती थी। चाय पिलाने के बाद ही प्रकाश उसे जाने देता था।

यह चाय पीना ही क्रमशः नित्य प्रति का अभ्यास हो गया। निर्मला सिर्फ चाय पीने ही नहीं जाती थी, बल्कि स्वयं चाय बनाती भी थी। जो अच्छे लगते हैं, उनके पास एक साथ बैठकर चाय पीने और पिलाने में न जाने कैसा एक नशा है। टन-टन करके तीन बजते ही वह अनुभव करती, जैसे कोई अदृश्य आकर्षण उसे ऊपर खींच रहा है। चाय की तृष्णा? कुछ देर पहले ही तो उसने खाना खाया है। इस वक्त चाय की इच्छा तो नहीं होनी चाहिए। तो भी, तो भी, तो भी! भरी हुई कलसी को लुढ़काकर फिर से पानी भरकर लाने की अर्थहीन अस्थिरता।

किस बात का लोभ? पुरुष की सन्निकटता का? लेकिन जीवन में पूरे छः वर्षों तक पति का साहचर्य क्या निर्मला को नहीं मिला? तब क्या प्रकाश की सुन्दरता? रुचि? विद्या? निर्मला का पति भी उसे कम

प्यार नहीं करता था। वह भी सुन्दर था, सुशील था, स्वस्थ था। तब फिर?

इस तब फिर का ही तो उत्तर नहीं है। सब कुछ जानते-बूझते हुए भी क्यों जो पुरुष आकर्षित होते हैं, क्यों जो युवतियाँ खिचती हैं, यह कौन बतायेगा?

और जो खिची हैं, उन्हें स्वयं को ही यह समझने में क्या कम समय लगा है। उस दिन अगर वह अनहोनी घटना न हुई होती, तो क्या वह कभी भी समझ पाती।

दोपहर के वक्त भैया से काफी झगड़ा हो गया। बेमतलब और बिना बात ही। गरीब घर-गृहस्थियों में प्रायः ही ऐसा होता रहता है। इस गृहस्थी में वह भार है। ऐसी गृहस्थी में, जिनको खुद अपनी रोटी के लाले पड़े रहते हैं। खाने-पीने और उठने-बैठने पर भी जहाँ बात-बात में ताने सुनने पड़ते हैं। उस दिन दोपहर को थाली परोसकर निर्मला खाने बैठी ही थी कि उसी समय भाभी ने दो-चार जली-कटी बातें कहीं। इतना ही नहीं, बल्कि कटु शब्दों में यह भी जता दिया कि निर्मला को खिलाने-पिलाने में कितना खर्च बैठता है। वह भी चिढ़ गयी और उसने कुछ कड़ा जवाब दे दिया था। वह मुफ्त में नहीं खाती, सुबह से शाम तक मेहनत करती है। जो भाभी बारहों महीने बीमार रहती है, महीने में पच्चीस दिन खटिया पर पड़े-पड़े ही अपनी कर्कश आवाज में हुक्म चलाती रहती है, उसे इतनी उल्टी-सीधी बातें बनाने की क्या जरूरत? शायद बात इतनी बढ़ती भी नहीं, क्योंकि औरतों में ऐसी चख-चख चलती ही रहती है। लेकिन भैया तो मर्द हैं। उन्हें औरतों की इस तू-तू मैं-मैं के बीच बोलने की क्या जरूरत थी?

उस दिन फिर निर्मला ने खाना नहीं खाया। थाली हटाकर उठ गयी। बिना कुछ बिछाये सारे दिन जमीन पर ही पड़ी रही। उस दिन चाय पीने ऊपर भी नहीं गई। पहली बार गैर-हाजिर रही। धीरे-धीरे

शाम हो गई, लेकिन फिर भी उठने की इच्छा नहीं हुई। रोते रहने की वजह से आँखें लाल हो गई हैं। खाली और सीली जमीन पर लगातार कई घंटे तक पड़े रहने के कारण हाथ-पैर और कमर में दर्द हो गया है। ऐसा लगता है, जैसे बुखार है।

जले लोहे जैसी दोपहरी के बाद अब संध्या हुई है। अब पड़ा नहीं रहा जा सकता, लेकिन उठकर ही क्या करेगी। सिर इतना भारी हो रहा है कि आज उससे कोई काम नहीं होगा। ठंडी हवा से शायद शरीर कुछ हल्का हो जायगा, यह सोचकर वह छत पर गयी।

और उस समय उसी छत पर प्रकाश चहलकदमी कर रहा था। लेकिन उसे क्या मालूम था? प्रकाश को देखते ही सिर ढँकते हुए फिर नीचे जाने के लिए उसने मुँह घुमाया ही था कि फौरन ही प्रकाश एकदम सामने आकर खड़ा हो गया।

'सुनिए!'

एकदम आमने-सामने पड़ जाने की वजह से निर्मला एक बार काँप उठी। भय और लज्जा, दोनों कारणों से ही। इतनी देर से वह रो रही थी, इसका प्रमाण उसकी सूजी हुई आँखें हैं। तो भी सहज भाव से हँसने की एक व्यर्थ चेष्टा करनी पड़ी।

बोली, 'कहिए, क्या?'

'आज चाय पीने के वक्त आप आयीं क्यों नहीं? जानती हैं, आपकी वजह से दो-दो बार पानी ठंडा हो गया?'

'तबीयत ठीक नहीं थी।'

'चाय पीने से शायद ठीक हो जाती। और अगर इच्छा न थी, तो न पीतीं, लेकिन आने में क्या हर्ज था?'

'इतनी सीढ़ियाँ चढ़ने की इच्छा नहीं हुई।'

प्रकाश बोला, 'इस बार तो वाकई आपने हँसा दिया। नीचे की मंजिल से शायद छत ही ज्यादा नजदीक है। बहाना भी जरा सोच-

समझ कर बनाना चाहिए। शरीर अस्वस्थ है या मन?' फिर क्षण भर चुप रहकर बोला, 'मैंने सब सुन लिया है। आज आपने लड़ाई-झगड़ा किया है।'

'लड़ाई-झगड़ा किया है, मैंने!' अन्त में प्रकाश ने भी उसे ही दोषी ठहराया! अब वह स्वयं को नहीं रोक सकी। वहीं, संध्या समय निर्मला फूट-फूटकर रोने लगी। उसे यह भी खयाल नहीं रहा कि वह यहाँ अकेली नहीं है।

और उसी क्षण, यह सोचते हुए भी सिहरन होती है, प्रकाश ने उसका स्पर्श किया था। शर्मीला प्रकाश, भीरु प्रकाश, जो उस दिन तक भी उससे अच्छी तरह बातें करने का साहस नहीं कर पाता था, वह ही अकस्मात् ऐसी अनहोनी बात कर बैठेगा, निर्मला ने कभी यह कल्पना तक नहीं की थी। पहले उसने एक हाथ पकड़ा। निर्मला के मन में यदि ज़रा ज़ोर होता, तो सहज में ही अपने को छुड़ा सकती थी। लेकिन सारे दिन भूखे रहने की वजह से, या ज़मीन पर पड़े-पड़े रोने की वजह से उसके शरीर में ज़रा भी शक्ति नहीं थी। और प्रकाश ने जिस हाथ से उसका हाथ पकड़ा था, वह हाथ भी तो काँप रहा था। हटाने में शायद कुछ मोह हुआ।

'अरे यह क्या, आपको तो बुखार है!'

तब तक समस्त स्नायु एक साथ झंकृत हो उठी थी। दीर्घ वैधव्य के पत्थर से दबे हुए विस्मृत, मृत और रंग-बिरंगी अनुभूतियों के तृण सरस स्पर्श से फिर सजीव हो उठे थे।

उसकी ठोड़ी पकड़कर मुँह ऊपर उठाते हुए प्रकाश ने कहा था, 'तुम रो रही हो, निर्मला?'

तब रोते हुए हँस पड़ी थी या हँसने के बजाय रो पड़ी थी, यह याद नहीं। भूल चुकी थी, सब कुछ भूल चुकी थी। प्रथम यौवन में जिस सुख की अनुभूति हुई थी, आज उसका लेशमात्र भी नहीं है। अब फिर क्यों

प्रकाश ने उस सर्वनाशी पिपासा की याद दिला दी, या याद बराबर ही थी? इतने दिनों की हँसी-खुशी, मेल-मिलाप, चाय के वक्त हर रोज हाजिर होना—इन सब का एक ही मतलब था। इतने दिनों तक सिर्फ इसे स्वीकार करने का साहस नहीं था।

'जानता हूँ, तुम्हें सब की बातें सुननी पड़ती हैं। लेकिन इस कारण ही रोना? छी!' कुछ द्विविधा और कुछ अति आग्रह की वजह से प्रकाश की अँगुलियाँ उस समय भी काँप रही थीं। वह निर्मला के आँसू पोंछने लगा। और निर्मला, अपने पैर के नाखूनों से छत के फर्श को घिसती हुई संकुचित हो खड़ी रही।

यह प्रकाश भी कैसा पागल है, खुले आकाश के नीचे, ठंडी हवा के झोंके, ऐसे वातावरण में यह क्या!

और निर्मला स्वयं भी कितनी लज्जित हुई थी। नहीं तो क्या जरा एक बार यूँ छू देने पर ही इस तरह कोई पसीजता है, या लगातार कई मिनटों तक पर-पुरुष के वक्षस्थल में मुँह छिपाकर रोता है!

सुबक-सुबक कर रोते हुए उस दिन निर्मला ने प्रकाश से क्या-क्या कहा था। ऐसे जीवन से क्या फायदा? बेमन से दिया हुआ खाना उसके गले में अटकता है, नीचे नहीं उतरता। वैधव्य सहन है, पर दूसरों के लिए यह भार-स्वरूप और सत्ताहीन अस्तित्व असह्य है।

और परम स्नेह से, कपाल पर से रूखे बाल हटाते हुए प्रकाश ने उसे आश्वासन दिया था, 'तुम इतनी निराश क्यों होती हो, निर्मला? यह मान लेने पर कि सब खत्म हो गया, क्या वास्तव में सब कुछ खत्म हो जाता है? फिर से शुरू भी तो किया जा सकता है। अब भी समय है। आजकल तो युवतियों की स्वाधीन जीविका के कितने ही पथ खुले हुए हैं। छोटे-मोटे काम-काज, जैसे दस्तकारी, कढ़ाई-बुनाई और सिलाई आदि सिखाने के अनेक सेन्टर हैं। इनमें से कई सेन्टरों को मैं जानता हूँ। यदि जरा धैर्य हो, साहस और आग्रह हो, तब स्वावलम्बी

बनने में कितनी देर लगती है! तुम जैसी बुद्धिमती युवती यह नहीं कर सकती?

'अन्नदासी का यह जीवन खत्म हो जायगा। इस अँधेरी रात के बाद और भी एक सबेरा है।' प्रकाश की ये बातें स्वप्न में सुनने के समान लगीं। अस्फुट स्वर में निर्मला सिर्फ कह सकी थी, 'कर सकती हूँ।'

और भी कुछ देर तक खामोशी छायी रही। अन्त में कुछ देर बाद निर्मला ने ही कहा था, 'चलिये, अब नीचे चलें।'

आश्चर्य, ऊपर जाते वक्त शरीर बहुत भारी लग रहा था। लेकिन अब सीढ़ियों पर से नीचे उतरते हुए ऐसा लगा, जैसे पक्षी की तरह हल्का हो। निर्मला के शरीर और मन में ऐसी संगीतमयी अनुभूति न जाने कितने दिनों से नहीं हुई थी। दोपहर की पारिवारिक कलह वह जैसे बिलकुल भूल गयी। खाली और सीली जमीन पर पड़े रहने की वजह से हाथ-पैर और कमर में जो दर्द हो गया था, वह भी जाता रहा।

निर्मला ने भगवान को प्रणाम किया। खुद ही जाने कब चूल्हा जलाने बैठ गयी। अपने किसी प्रिय गीत के बोल उसने गुनगुनाये थे या नहीं, यह ठीक से याद नहीं।

भाभी ने कुछ चकित होते हुए दरवाजे में से झाँका। फिर अपनी कर्कश आवाज में बोलीं, 'तुम्हें क्या हुआ, बीबीजी? अचानक यह खुशी कैसी?'

'तुमने क्या खुशी देखी, भाभी?'

'गुनगुना रही हो न, मुँह पर हँसी खेल रही है, इसलिए पूछा।'

'यह कुछ नहीं,' कढ़ाई में साग छौंकते हुए निर्मला ने उत्तर दिया था, 'आज दिन भर रोती रही हूँ न भाभी, इसलिए अब खुश होकर हिसाब बराबर कर रही हूँ।'

भाभी के चले जाने के बाद भी निर्मला मन-ही-मन कुछ देर तक हँसती रही थी। क्यों इतनी हँसी? आज उसे क्या मिल गया है? भाभी से नहीं कहा जा सकता। सिर्फ भाभी से ही क्यों, किसी से भी नहीं। किसी भी दिन नहीं। कठोर तपस्या से प्राप्त मन्त्र की तरह बहुत सावधानी से इसका पालन करना होगा। एकान्त में, छाया में बढ़नेवाली लता की तरह। इस लता में यदि किसी दिन फूल खिलें, तब भी नहीं। किसी को भी यह बताने का उपाय नहीं है कि उसका और प्रकाश का क्या सम्बन्ध है। समाज-प्रहरी की उँगली निषेधात्मक है।

जीने में पैरों की आहट सुनकर निर्मला ने झाँका। फीकी ज्योत्स्ना में उसने देखा कि प्रकाश और शान्ति नीचे उतर रहे हैं। आज शान्ति ने कैसा असाधारण शृंगार किया है, गहरे लाल रंग की साड़ी पहनी है। दरवाजे मे बाहर निकलते हुए शान्ति की दबी हुई हँसी सुनाई पड़ी।

मन-ही-मन निर्मला ने प्रकाश की बुद्धि की तारीफ़ की। निर्मला से उसे स्नेह है, लेकिन इसी कारण उसने अपने कर्त्तव्य को तिलांजलि नहीं दी है। यह अच्छा ही है कि आज वह शान्ति के साथ घूमने गया है। इससे किसी को संदेह करने का तो कोई मौका नहीं मिलेगा।

भाभी जाने कब दरवाजे पर आकर खड़ी हो गयी थीं।

'वे दोनों शायद सिनेमा गये हैं, रात के शो में?' धीरे से बोलीं। लेकिन जब निर्मला ने कोई जवाब नहीं दिया, तो अपने आप ही बड़बड़ाने लगीं, 'ये दोनों खूब मज़े में हैं, ना। बहुत सुखी हैं। न रुपये पैसे की कोई चिन्ता है और न कोई बाल-बच्चा ही है। जब जहाँ खुशी हुई, हाथ पकड़ा और चल दिये।'

और इसके साथ-ही-साथ जैसे निर्मला का मुँह पीला पड़ गया था। कलेजे पर मानों किसी ने हथौड़ी मार दी। इस तरफ तो उसका ख्याल ही नहीं था। प्रकाश का स्नेह उसे भी तो मिला है, वह भी तो सुखी

है। लेकिन तो भी कितना फर्क है। शान्ति के सुख का पात्र जैसे भरकर बहा जा रहा है। कोई लुकना-छिपना नहीं है। वह सुख मानों सब को दिखाकर भोगने के लिए है।

निर्मला ने एक दीर्घ श्वास छोड़ा और इसके साथ-ही-साथ उसका हृदय जैसे संपूर्णतः खाली हो गया। यह अधिकार उसे नहीं है। जन-स्वीकृति की राज-सड़क पर प्रकाश को पाने का उपाय कहाँ है? प्रत्येक मिलन-घड़ी के लिए उन्हें प्रतीक्षा करनी होगी—सब से छिपकर, हजारों बाधाओं को पारकर, एकान्त स्थान में। किसी दिन भी क्या प्रकाश उसको इस तरह अपने साथ घुमाने ले जा सकेगा, आज जैसे शान्ति को ले गया है?

उस दिन आधी रात तक निर्मला बिछौने पर पड़े-पड़े करवटें बदलती रही थी। ग्यारह, साढ़े ग्यारह, बारह बजे। इस समय एकदम शान्ति है। कुछ देर बाद उसने प्रकाश और शान्ति के आने की आहट भी सुनी। सीढ़ी चढ़ते हुए हँसी की आवाज भी सुनाई पड़ी।

सारा शहर ठंडा और निस्पन्द है, जैसे मर गया हो। लेकिन निर्मला को नींद नहीं आयी। सारी रात तकिये में मुँह छिपाये बिछौने की चादर पर तर्जनी से लिखा है—

'प्रकाश, तुम्हें नमस्कार करती हूँ। आज तुमने मुझे आत्मविश्वासी जीवन का पथ बताया है। सिर्फ यही नहीं, बल्कि स्नेह भी किया है। यह बात अन्य किसी को भी मालूम नहीं होगी। बता भी नहीं सकोगे। विद्युत् जैसी वेदना और सुख एकमात्र मेरा ही है।'

पर यह सब कुछ तो दो दिन में ही खत्म हो गया।

प्रकाश ने अपनी बात रखी थी। निर्मला के सामने उसने सिर्फ अपने गुप्त स्नेह का अर्घ्य ही निवेदन नहीं किया था; बल्कि निर्मला को अपने पैरों पर खड़े होने का पूरा सुयोग मिले, इसका भी उसने पूरा

प्रबन्ध कर दिया था। एक नारी-कल्याण समिति में सिलाई सिखाने का भार निर्मला को मिला। इसके विनिमय में पुराने कपड़ों के खिलौने तथा कागज के फूल बनाना उसने सीखा है। आजकल बाजार मन्दा है। इस कारण अभी पूरी तरह से अपना खर्च अपने आप ही चलाने की सामर्थ्य निर्मला में नहीं आयी है। लेकिन फिर भी अब वह सम्पूर्णतः भार नहीं है। भैया की अभाव की गृहस्थी में कम-से-कम कुछ तो सहायता कर ही रही है। यह संतोष क्या कम है?

कितनी देर तक तन्मय होकर निर्मला सोचती रही, कहा नहीं जा सकता। दरवाजे पर फिर रोने की आवाज सुनते ही वह फिर संभल कर बैठ गयी। एक-एक कर शान्ति को सब गहने-कपड़े उतार देने पड़े हैं। पोंछना पड़ा है माँग का गर्व-सिंदूर। चूड़ियाँ तोड़नी पड़ी हैं। रंगीन साड़ी की जगह मोटे कपड़े की सफेद धोती पहननी पड़ी है।

अब शायद शान्ति चिल्ला नहीं पा रही है, डकारने की जैसी आवाज आ रही है। पर अब भी वह अपना माथा ठोके जा रही है।

आज अब शान्ति से ईर्ष्या करने लायक कुछ नहीं है। वेश-भूषा और रहन-सहन में वह पूरी तरह से निर्मला की श्रेणी में आ गयी है। फिर भी, निर्मला को ऐसा लगा, शान्ति को एक तसल्ली है, गला फाड़-फाड़ कर रोने-चिल्लाने का अधिकार है। और एक बूंद भी आँसू न बहा सकने के कारण निर्मला का हृदय जलकर जैसे राख हो गया है।

कल से ही, निर्मला जानती है, शान्ति के नाम सहानुभूति की असंख्य चिट्ठियाँ और तार आयेंगे। कालेजों में, यहाँ-वहाँ, मुहल्ला कमिटी में उसके प्रति समवेदना के प्रस्ताव पास होंगे।

चूल्हे की आग न जाने कब की बुझ चुकी थी। खाना बन चुका है। निर्मला ने कोयले का एक टुकड़ा उठा लिया। फिर फर्श पर लिखने लगी—

'प्रकाश, मेरा आखिरी बार का प्रणाम लो। जब वे सब लोग तुम्हें ले गये, तब दूर से मैंने देखा था। सामने पहुँचकर, तुम्हारे पैरों पर अपना सिर झुकाने का साहस नहीं हुआ। लोगों की कानाफूसी का डर था। दो बूँद आँसू भी बहा सकूँ, यह मौका भी भला कहाँ मिला? आँसू बहाने पर लोग संदेह तो नहीं करते, पर यह जरूर सोचते कि सिर्फ दिखावा है। किसी को भी यह नहीं बता सकी कि आज मेरा क्या चला गया। लेकिन इसकी मुझे कोई शिकायत या शिकवा नहीं है। खुले आकाश के नीचे जिस दिन तुमने प्रथम स्पर्श किया था, उस दिन की उस स्वप्न रोमांचित संध्या के बाद मैंने अपने असहनीय सुख का भार भी तो अकेले ही उठाया है। अतः यह असह्य दुःख भी मैं अकेले ही झेल लूँगी।'

बरामदे में किसी की छाया नजर आयी? शायद भाभी फिर आ रही हैं।

निर्मला ने फौरन ही एक गीले कपड़े से लिखा हुआ पोंछ डाला। कोई देख न सके, जैसे किसी को मालूम न होने पाये।

लँगड़ी सुग्गी, बहरी सोनिया, कुबड़ी बिरौनी और लूली गंगा की माँ, ये सब-की-सब बस्ती से एक-एक कर भीख माँगने चली गयीं। सिर्फ राधा ही नहीं गयी। बुखार में सारा शरीर तप रहा है। सड़क पर बैठकर भीख माँगने की शक्ति आज उसमें नहीं है।

अपनी छोटी-सी कोठरी में एक फटा-पुराना दोहर ओढ़े राधा पड़ी हुई है। सिर-दर्द से परेशान हो वह बार-बार करवटें बदलती है। दर्द सिर्फ सिर में ही नहीं है, जलन सिर्फ बुखार की ही नहीं है।

आज मकर-संक्रान्ति के दिन घर में पड़ा रहना पड़ रहा है। ऐसा अच्छा कमाई का दिन यूँ ही व्यर्थ जायगा, यह दुःख भी उसे कम नहीं जला रहा है। उसकी हमपेशा पड़ोसिनें आज फल-फूल, दाल-चावल और पैसों से अपनी झोली भरकर लौटेंगी।

लेकिन राधा को ही आज कुछ नहीं मिलेगा। सिर्फ उसे ही भूखा रहना पड़ेगा, आज बुखार की वजह से और कल संबल न रहने के कारण।

'अरी ओ कानी राधा, अन्दर है क्या? अरे, दोहर ओढ़े क्यों पड़ी है? क्या हुआ री?'

चिढ़ते हुए राधा ने जवाब दिया, 'अबे ओ कलमुँहे नन्दू, आज मुझे तंग न कर। अगर भीतर घुसा, तो टँगड़ी तोड़ दूँगी।'

नन्दू तबतक राधा की कोठरी में दाखिल हो चुका था। 'टँगड़ी पीछे तोड़ना, पहले देख मैं क्या लाया हूँ। अरी देख तो सही, तेरे लिए क्या लाया हूँ।'

राधा ने अब अपने मुँह पर से दोहर हटाया, 'क्या लाया है रे?'

'यह देख...'

कहते हुए नन्दू नीचे झुका और एक गन्दे से तौलिये में लिपटी हुई कोई चीज राधा की बगल में रख दी। रखने के साथ-साथ तौलिये में लिपटी हुई चीज टें-टें कर उठी।

अब राधा को समझते जरा भी देर नहीं लगी। उत्तेजित हो उठ बैठी और गालियाँ देनी शुरू कर दी, 'साला हरामी! मरने के लिए तुझे और कहीं दुनिया में जगह नहीं मिली? हटा यहाँ से, अभी इसे यहाँ से ले जा। घूरे पर से उठाकर लाया है, घूरे पर फेंक दे। छी-छी, इसे तो छूने में भी मुझे नफरत होती है!'

नन्दू बोला, 'ओहो, बनना तो जरा देखो। क्या कहने हैं, तू तो बड़ी सती-साध्वी है न! अरी राँड, जरा आँखें खोलकर अच्छी तरह देख—तुझसे लाख दर्जा सुन्दर है। हो न हो, किसी बड़े आदमी का ही है।'

नन्दू ने तौलिया एकदम हटा दिया। राधा ने अब उस चीज को अच्छी तरह देखा। लड़का है। अगर जिन्दा रहा, तो बड़ा होकर बहुत सुन्दर निकलेगा। गोरा रंग, बड़ी-बड़ी आँखें, सुडौल नाक और सिर पर बहुत छोटे-छोटे सुनहरे बाल।

राधा ने पूछा, 'कहाँ मिला रे?'

'चौराहे के घूरे के पास। घूरे के भीतर डालते हुए शायद मोह हुआ होगा, इसलिए बाहर ही रख दिया। किस्मत की बात कि मैं बहुत अँधेरे ही उठकर उधर से जा रहा था, नहीं तो जमादारिन के हाथ पड़ जाता और वही ले जाती। बोल, तू इसे पालेगी?'

'मुझे क्या पड़ी है? खुद ही खाने के लाले पड़े रहते हैं, फिर ऊपर से यह मुसीबत कौन लेगा? तुझे ऐसा दर्द है, तो तू ही इसे पाल-पोस। सड़क से लाकर तू ने घायल बिल्ली पाली थी, मुहल्ले का लँगड़ा कुत्ता भी पोसा था। इस बार अब कुत्ते-बिल्ली के बजाय बच्चा ही पाल। बिना पैदा किये ही तू बच्चे का बाप बन जा।'

'अरी, बाप बन चुका हूँ या नहीं, यह तू क्या जाने?'

राधा जरा हँसी, 'अरे कलमुँहे, अपनी झूठी बड़ाई करते शर्म नहीं आती। बड़ा सुन्दर है न।'

नन्दू प्रायः चालीस साल का होगा। काला, लम्बा और सूखा हुआ चेहरा। दुबले-पतले शरीर की हड्डियाँ गिनी जा सकती हैं। राधा उसे यूँ ही बेमतलब कलमुँहा नहीं कहती। सिर्फ मुँह ही नहीं, बल्कि ऐसा लगता है, जैसे उसका सारा शरीर जला हुआ हो। मानो अभी-अभी चिता से उठकर आया हो।

नन्दू भी इसी बस्ती में रहता है। उसके सब अंग-प्रत्यंग ठीक हैं, पर अपाहिज बनने में भी वह उस्ताद है। कभी अन्धा बन जाता है और कभी लूला-लँगड़ा। कभी भीख माँगता है और कभी चोरी करता है। जब पाकिटमारी करते हुए या किसी दुकान में हाथ की सफाई दिखलाते हुए पकड़ लिया जाता है, तो उसकी खूब धुलाई होती है। तब वह फिर भीख माँगना शुरू कर देता है। एक के बाद एक, दो औरतों को वह कहीं से भगा लाया था अपना घर बसाने के लिए। पर नन्दू का यह रंग-ढंग देखकर वे ज्यादा दिन तक नहीं टिक सकीं। दोनों भाग गयीं।

दिन के वक्त सड़क के किनारे बैठकर वह गाता है : 'पंछी आया अकेला, जाये भी अकेला, फिर काहे का यह सारा झमेला?' पर रात के वक्त नन्दू ही सारा झमेला करता है। किसी-किसी दिन राधा की कोठरी के सामने धरना देता है। पहले एक-दो बार तो राधा ने उसे जगह दे दी थी, पर नन्दू तो चार आने भी खर्च करने को तैयार नहीं है। पैसे माँगने पर नन्दू ने बहुत आश्चर्य प्रकट किया था, 'अरी, पैसा किस बात का?'

'ठहर तो सही, अरे कलमुंहे हरामी, तेरा सारा लेना-देना अभी निकालती हूँ।' और यह कहते हुए राधा झाड़ू लेकर मारने दौड़ी थी।

और एक दिन बहुत खुशामद कर उसने राधा को राजी किया था। पैसा देने का वायदा भी किया था। जब खा-पी चुका, तो अन्त में नन्दू ने अपनी टेंट से सिर्फ एक दुअन्नी ही निकाली और वह भी खोटी।

गुस्से से काँपते हुए राधा ने वह दुअन्नी बाहर फेंक दी थी, 'अरे कलमुंहे हरामी, मेरे घर रहा और खाया-पिया, अब जाते वक्त दो आने देकर भागना चाहता है! दो रुपये से एक कौड़ी भी कम नहीं लूंगी।'

नन्दू भी चिढ़ गया था, 'ऐसे कौन-से माल चटवा दिये, जो तू दो रुपये से कम न लेगी।"

इसी बात पर राधा चीखती-चिल्लाती रही। खूब गालियाँ दीं। जी भरकर कोसा। पर नतीजा कुछ नहीं निकला। नन्दू से और एक धेला भी वह वसूल नहीं कर सकी।

उस दिन से ही राधा नन्दू को खूब अच्छी तरह जान-पहचान गयी है। अब वह उसे अपने पास तक नहीं फटकने देती। दुनिया के रंग-ढंग और तौर-तरीकों से राधा भलीभाँति परिचित है। वह है भी तो तीस साल की। उम्र की अपेक्षा बुद्धि और अनुभव कहीं ज्यादा है।

वही नन्दू।

राधा की रसिकता का बिना कोई जवाब दिये ही नन्दू बोला, 'मुझे अभी जाना है। तुझे अगर रखना है तो रख ले, नहीं तो मैं और किसी को दे दूंगा।"

राधा बोली, 'जा-जा दे दे। इसे लेकर मैं क्या करूँगी? खिलाऊँगी-पिलाऊँगी क्या? दो दिन में ही मर जायगा। मुझे यह सिर-दर्द नहीं चाहिए।"

'बहुत अच्छा।'

यह कहते हुए नन्दू तौलिया-सहित बच्चे को उठाकर लिये जा रहा था। राधा ने उसे रोका, 'ऐ सुन। किसे देगा?'

'जिसे मेरी इच्छा होगी, उसे दूंगा। तू तो लेगी नहीं न?'

'अच्छा मान ले कि अगर मैं ले लूं।'

'बहुत ठीक। तो फिर ले ले। बोल, कितना दाम देगी?'

चकित हो राधा बोली, 'अरे वाह, इसका दाम! किस बात का? तुझे तो घूरे पर पड़ा हुआ मिला है। यह कोई तेरी अपनी चीज है, जो तुझे कीमत देनी होगी?'

'अरी वाह, बड़ी चालाक है। तू समझती है कि ऐसी अच्छी चीज मैं यूँ ही मुफ्त में दे दूँगा। तू इसे दिखा-दिखाकर भीख माँगेगी, खूब पैसा पैदा करेगी। अरी, किसी आँख के अन्धे और गाँठ के पूरे निःसन्तान सेठ को मैं कम-से-कम हजार रुपये में यह बच्चा बेच सकता हूँ।'

'तो जा, बेच दे। खबरदार जो फिर यहाँ आया। अगर पुलिस को पता चल गया, तो फिर बेटा, हजार रुपये की जगह बड़े घर की सैर करनी होगी। जानता है न?'

'जेल होगी, तो मुझे होगी—तेरा क्या?

नन्दू जा रहा था। राधा ने फिर पुकारा, 'अरे कलमुँहे, सुन।'

नन्दू ने सिर घुमाया, 'क्या?'

राधा बोली, 'नकद रुपया मेरे पास कहाँ है? बेचेगा तो तू भी आफत में पड़ेगा। इससे अच्छा तो यह है कि हम दोनों इसे एक साथ ही रखें। पालने-पोसने में जो खर्च होगा, वह तू देगा। और इससे जो आमदनी होगी, उसमें से आधा हिस्सा मैं तुझे दे दूंगी। बोल, इस बात पर तू राजी है न?'

'क्या कहने हैं तेरे! दुनिया की सारी चालाकी तो जैसे तेरे हिस्से में ही आयी है। खर्च के वक्त सोलहो आने मैं दूँगा और आमदनी में मुझे सिर्फ आधा हिस्सा मिलेगा! वाह, वाह!'

व्याकुल हो राधा ने कहा, 'इससे ज्यादा और क्या दे सकती हूँ, तू ही कह? मुझे भी तो अपने जिन्दा रहने के लिए कुछ चाहिए कि नहीं? और फिर इसमें मैंने बेजा क्या कहा? इसकी सेवा और देखभाल भी तो करनी होगी, वह कौन करेगा? मुझे ही तो सब कुछ करना होगा। इसकी सेवा-टहल में मेरा-वक्त जाया नहीं होगा? तब इससे ज्यादा मैं और क्या दे सकती हूँ, तू ही कह?'

'इच्छा हो, तो दे सकती है। और भी तुझे कुछ देना होगा, और भी कुछ देना होगा।'

'बोल न, और क्या दूं ?'

'रात को मुझे घर में रहने देगी ?'

अब राधा ने हँसते हुए कहा, 'अरे कलमुँहे, तेरे मन में यह चालाकी थी। अच्छा, रहा करना—लेकिन हर रोज नहीं।'

नन्दू ने जवाब दिया, 'रोज आने की मुझे फुर्सत कहाँ है। जिस दिन टेंट में पैसा नहीं रहेगा, सिर्फ उसी दिन आया करूँगा।'

दोनों में बात पक्की हो गयी। बच्चे के रोने का स्वर क्रमशः क्षीण होता जा रहा था। नन्दू ने शंकित होकर कहा, 'अरी ऐ, जरा देख तो सही, कहीं इसकी टें तो नहीं बोल गयी।'

बच्चे को जल्दी से गोदी में उठाते हुए राधा बोली, 'नहीं, अभी जिन्दा है। तू जरा जल्दी से जाकर दूध ले आ। अगर कहीं थोड़ा-सा शहद और सुहागा मिले, तो वह भी ले आना।'

'अच्छा जाता हूँ। लेकिन इतने में तू इसे अपना दूध तो पिला।'

कुछ शर्माते हुए राधा ने जवाब दिया, 'मेरे दूध से क्या होगा ? उसमें रखा ही क्या है।'

'तो माँ क्यों फोकट में ही बनने चली है ?'

एकाएक राधा इस बात का कोई उत्तर नहीं दे सकी। नन्दू को जोर से धमकाते हुए बोली, 'जो तू नहीं समझता, उसमें अपनी टाँग न अड़ाया कर। तुझे जाना है, तो जल्दी जा और चीजें ले आ।'

नन्दू फिर कुछ नहीं बोला। चुपचाप चला गया।

शाम के वक्त भिखारी बस्ती के लोगों ने जब राधा की कोठरी में बच्चे का रोना सुना, तो सब अचम्भे में आ गये। एक-एक कर सब उसकी कोठरी के सामने इकट्ठे हो गये।

'हे भगवान, यह बच्चा तुझे कहा मिला, राधा ?'

राधा ने जवाब दिया, 'औरतों को लड़का कहाँ से मिलता है ? मुझे भी मेरे मर्द ने दिया है।'

कुछ दूर पर खड़ा हुआ नन्दू सब सुन रहा था। राधा की यह बात सुनकर उसे जैसे कुछ शर्म आयी। लेकिन इसके साथ-साथ उसने कुछ गर्व का भी अनुभव किया। इस सारी बस्ती में राधा ही सबसे सुन्दर है। सिर्फ एक आँख नहीं है। बाकी और सब कुछ है। अब भी उसका शरीर चुस्त और स्वस्थ है। उसमें चपलता और ताजगी है। और इसके साथ-साथ वह अक्लमन्द भी है।

पर उसके सारे गर्व को चूर करते हुए जमाल बोल उठा, 'यह बात है, राधा! बहुत अच्छे, बहुत अच्छे! कौन-सा रूपवान और गुणवान मर्द था, जो तुझे अपना पेट चीरकर ऐसा सुन्दर बच्चा दे गया?'

राधा बोली, 'कोई भी दे गया हो, तुझे क्या पड़ी है? जलन के मारे तेरी तो छाती फटी जा रही है।'

कुछ दिनों बाद राधा ने एक दिन नन्दू से कहा, 'बच्चा जब बच ही गया है, तो फिर इसका कोई नाम तो रखना चाहिए न?'

नन्दू बोला, 'सिर्फ नाम? ढोल-मजीरा बजाकर उसका अन्नप्राशन नहीं करेगी? घूरे पर पड़ा हुआ जो बालक मिला, उसका फिर नाम क्या?'

'नहीं, नहीं। ऐसा सुन्दर बच्चा है। किसी देवी-देवता के ऊपर इसका अच्छा-सा नाम रखो।'

'देवी-देवताओं के ऊपर तो पुराने जमाने में नाम रखे जाते थे। इसका नाम मैं रखूंगा रतन—रतनलाल। और तुझसे कहा करूँगा, रतन की माँ।'

राधा जरा हँसी, 'लेकिन इसी कारण मैं तुझे रतन का बाप नहीं कहने की हूँ। कहूँगी—रतन के मौसा।'

'तेरी जो इच्छा हो, सो कहना। पति-पत्नी के बजाय साली और जीजा का रिश्ता तो और भी मजेदार है। मैं यही समझूंगा कि तू मेरी विधवा साली है।'

'चल रे कलमुँहे, मैं विधवा क्यों होने लगी।'

राधा की कोठरी में थूकने का अभिनय करते हुए नन्दू ने कहा, 'अरे हाँ-हाँ। तू ठीक ही तो कहती है। भला तेरी जैसी सदा सुहागन कभी विधवा हो सकती है। जब तक दुनिया में मैं जिन्दा रहूँगा, तब तक तू सधवा रहेगी। किसमें इतनी हिम्मत है, जो तेरी माँग का सिन्दूर पोंछ सके?'

राधा ने जवाब दिया, 'और क्या? भला मेरा सिन्दूर कौन पोंछ सकता है और तू पोंछने भी क्यों देगा?'

लेकिन यह रसीला नाता-रिश्ता ज्यादा दिनों तक स्थायी न हो सका। महीने भर बाद ही आमदनी-खर्च के बँटवारा को लेकर दोनों में मतभेद हो गया।

रतन को कंधे से लगाकर राधा रोज भीख माँगने जाती है। किसी दिन कचहरी के पास बैठती है और किसी दिन काफी हाउस के सामने। राहगीरों को देखते ही हाथ फैला देती है। बच्चे को दिखाती है। बहुत ही रुँआसी आवाज में कहती है, 'बाबा, एक पैसा दे दो इस बच्चे के नाम पर। मैं अपने लिए नहीं माँगती, बच्चे पर रहम करो। आज दो दिन से यह भूखा है। तुम्हारे रहते यह नन्हीं जान भूखी मरेगी! भगवान तुम्हारा भला करे।'

उसकी यह दयनीय पुकार सुनकर कोई-कोई ठहर जाता है। कोई पैसा देता है, कोई अधन्ना और कोई-कोई दाता इकन्नी-दुअन्नी तक दे देता है।

अधिकांश व्यक्ति पैसा नहीं देते। कोई-कोई खड़ा होकर संदेह जाहिर करता है, 'क्या वाकई यह तेरा बच्चा है? या अपने पेशे के लिए कहीं से चुरा लायी है?'

राधा फौरन जवाब देती, 'अरे भैया, अपना बच्चा न होता, तो फिर तुम्हारे आगे हाथ क्यों फैलाती?'

इसके बाद उसे दो-चार पैसे मिल जाते हैं। पर तरह-तरह की टीका-टिप्पणी भी उसे सुननी पड़ती है—'अरे ये सब चोचले हैं, भीख माँगने का तरीका है!'

राधा यह सारी टीका-टिप्पणी चुपचाप सुनती है। सब बातें तो नहीं समझती; लेकिन हाँ, इतना जरूर समझती है कि यह पेशा अब और ज्यादा दिन नहीं चलेगा। आदमी अब बहुत चालाक हो गये हैं। जल्दी उनके मन में दया का भाव जाग्रत नहीं होता। दिन-ब-दिन लोग कंजूस होते जा रहे हैं। एक पैसा भी हिसाब से खर्च करते हैं। पुण्य लूटने का लोभ अब किसी को नहीं रहा है। सुबह से शाम तक एक पुण्यात्मा की प्रतीक्षा में पल-पल गिनना पड़ता है। यह बड़ा मनहूस धंधा है। बैठे-बैठे घुटनों में दर्द हो जाता है और खड़े-खड़े पैर थक जाते हैं। बच्चा भी बेचारा परेशान होता है—दिन भर टें-टें करता रहता है। कभी-कभी राधा को बच्चे पर बहुत गुस्सा आता है। इच्छा होती है कि इसका गला दबा दे, तो सारी मुसीबतों से छुटकारा मिल जाय। उसे क्या पड़ी थी, जो बैठे ठाले यह आफत मोल ले ली।

इतनी आरजू-मिन्नत और चीख-चिल्लाहट के बाद भी ज्यादा भीख नहीं मिलती। किसी त्यौहार या मेले के दिन दस-बारह आने ज्यादा मिल जाते हैं रोज की अपेक्षा, लेकिन अन्य दिन आमदनी बहुत कम होती है। बार-बार राधा ने जगह बदली है। यहाँ से वहाँ और वहाँ से यहाँ। लेकिन उसकी किस्मत नहीं बदलती।

उस दिन जब वह शाम को लौटी, तो देखा कि नन्दू उसकी कोठरी के सामने बैठा हुआ प्रतीक्षा कर रहा है। राधा अपनी कोठरी का ताला खोलने ज्यों ही आगे बढ़ी कि नन्दू ने उसे रोका, 'ताला पीछे खोलना, पहले यह बता कि आज कितना मिला है? मुझे इस वक्त पैसों की सख्त जरूरत है।'

राधा ने कहा, 'तू जरा देर ठहर नहीं सकता ? पहले ताला तो खोल लेने देता । मिलेगा क्या—हाथी मिला है, घोड़ा मिला है, यह ले ।'

आँचल की गाँठ खोलकर राधा ने सब पैसे जमीन पर पटक दिये ।

घुटनों के बल बैठकर नन्दू ने सारे पैसे उठा लिये, 'अरे, सिर्फ़ साढ़े नौ आने ! और पैसे कहाँ हैं ?'

राधा ने विकृत मुँह बनाते हुए उत्तर दिया, 'मैंने रख लिये हैं। अरे ओ कलमुँहे, सारे पैसे अपनी टेंट में क्यों लगा रहा है ? मुझे कुछ नहीं चाहिए ? मैं क्या हवा खाकर जिन्दा रहूँगी ?'

'अरी राँड, तुझे खाने की क्या कमी है । मुझे भूखों मारकर अपना पेट भरती है । कई दिन से मैं देख रहा हूँ । दूध का खर्च मैं दूँ, चीनी का खर्च भी मेरे जिम्मे और मुझे मिलता क्या है ? दो-तीन दिन बाद सात-आठ आने से कभी ज्यादा नहीं देती । यह चालाकी अब मैं बर्दाश्त नहीं करूँगा, समझी ?'

'अरे ऐ कलमुँहे, देख बेमतलब मुझसे हुज्जत करेगा, तो अच्छा नहीं होगा । झाड़ू मार-मारकर तेरी अक्ल पच्चीस कर दूँगी ।'

अब तो नन्दू भी आपे से बाहर हो गया, 'हरामजादी, साली तेरी यह हिम्मत ! राँड, मुझे झाड़ू मारेगी ? ला झाड़ू ला—देखूँ तो सही तेरी हिम्मत । चोर कहीं की । रोज पैसे चुरा लेती है । बच्चे का सारा खर्च मैं दूँ और कमाई खायेगी तू ? हर रोज चिकनी-चुपड़ी बातें कर मुझे खाली हाथ टरका देती है ।'

'चोर तू और तेरा बाप । बेईमान—तेरे सात पुरखे बेईमान । सारी दुनिया जानती है कि चोर कौन है । पुलिसवाले किसकी तलाश में घूमते रहते हैं, मुहल्लेवालों से छिपा नहीं है । हरामी कहीं का !'

अब राधा को मारने के लिये नन्दू आगे बढ़ा ।

इतनी देर से बस्ती की सारी भिखारिनें और भिखारी खड़े-खड़े मजा ले रहे थे । लेकिन राधा को मारने के लिए ज्यों ही नन्दू ने हाथ

उठाया कि जमाल ने उसे पकड़ लिया। सिर्फ पकड़ा ही नहीं, बल्कि दो-चार धौल भी जमा दिये। बस्ती के सब लोग जानते हैं कि जमाल राधा का बहुत प्रियपात्र है। उम्र में नन्दू से छोटा है, लेकिन शारीरिक शक्ति में उससे बढ़-चढ़कर है।

अब नन्दू चिल्लाया, 'ला, मेरा बच्चा मुझे लौटा दे। अगर अब फिर कभी तूने उस बच्चे को छूआ भी, तो मुझसे बुरा कोई न होगा—तू कोढ़ी हो जाय, तेरे हाथ गल जायँ।'

'अरे नीच, तू मरे। तू कोढ़ी हो। मैं क्यों होऊँ। यह ले अपना बच्चा। घूरे पर से उठाये हुए इस मांस के लोथड़े को कौन लेगा? थू-थू-थू...'

और यह कहते हुए राधा ने बच्चे को जमीन पर पटक दिया और अपनी कोठरी में घुस गयी।

बच्चा जोर-जोर से रोने लगा। कुछ देर तक चुपचाप खड़े रहने के बाद नन्दू उसे उठा ले गया। धत्तेरे की, यह भी एक मुसीबत है! सारी मुसीबतें उसी के हिस्से में आयी हैं। रुपया-दो रुपये जो भी मिले, कल ही वह इसे नकद कीमत पर बिक्री कर देगा। अब वह किसी के भी साथ साझे का काम कभी नहीं करेगा। साझेदारी के काम में हमेशा वही ठगा जाता है। हर बार ऐसा ही होता है। पाकिटमारी करते हुए जब पकड़ लिया जाता है, तो पब्लिक के थप्पड़ और लात-घूंसे उसे ही सहने पड़ते हैं। लेकिन बँटवारे के समय सरदार उसे चार-आठ आने देकर ही टरका देता है। राधा ने भी यही सलूक किया है।

नन्दू चार पैसे का दूध लाया और बच्चे को पिला दिया। फिर अपनी कोठरी का ताला बन्द कर बाहर चला गया। मन-ही-मन कहा, आज तू यहीं पड़ा रह, हरामजादे! कल देखूंगा कि तेरे लिए कौन-सा राजमहल बना है।

बहुत रात गये जब नन्दू लौटा, तो उसने देखा कि राधा की कोठरी में ढिबरी जल रही है और जमाल और उसके दोस्त गफूर के हँसी-मजाक की आवाज कोठरी से आ रही है। कुछ देर बाद गफूर चला गया, लेकिन जमाल भीतर से नहीं निकला। राधा ने नन्दू को सुनाने के लिए बहुत जोर से किवाड़ बन्द किये।

दूसरे दिन राधा अकेली ही भीख माँगने निकली। वहीं कचहरी के पास जा बैठी। भीख में दो-चार पैसे मिले भी। अचानक एक रंगीला नौजवान उसके सामने खड़ा होकर कहने लगा, 'अरी, तेरे पास एक बच्चा था न? आज कहाँ गया?'

राधा ने यह सोचा भी नहीं था कि इस तरह कोई पूछेगा। जरा घबड़ा गई। लेकिन फ़ौरन ही अपने को संभालते हुए बोली, 'भगवान ने उसे अपने पास बुला लिया।'

उस रंगीले नौजवान ने सहानुभूति जाहिर की, 'उफ़, क्या हुआ था?'

'सर्दी लगकर निमूनिया हो गया था। बिना दवा-दारू के ही चल बसा, किसी डाक्टर-हकीम को भी नहीं दिखा सकी।'

उस रंगीले नौजवान ने फिर कुछ नहीं कहा। एक चवन्नी फेंक कर चला गया।

बहुत दिनों से राधा को एक साथ चवन्नी किसी ने नहीं दी थी। इस अप्रत्याशित लाभ से उसे जितनी खुशी होनी चाहिए थी, मानो उतनी खुशी उसे नहीं हुई, बल्कि उसका मन जाने कैसा-कैसा होने लगा। हिश, मैंने यह क्या कहा! हे भगवान, उसे कुछ न हो।

मन-ही-मन उसने वह चवन्नी देवता को चढ़ा दी। घर पहुँचकर सबको राजी-खुशी देखूं, तो तुम्हें डाला चढ़ाऊँगी।

हर रोज की अपेक्षा उस दिन राधा जरा जल्दी ही लौटी। लँगड़ी सुग्गी उससे कुछ पहले ही आ गई थी। उसी ने दौड़कर सबसे पहले

खबर दी, 'अरी राधा, तूने सुना ? घूरे से उठाया हुआ नन्दू का बच्चा—टें बोल रहा है। खूब तेज बुखार है और साथ-साथ उसका पेट भी चल रहा है। आज की रात नहीं कटेगी। ऐसा लगता है कि थोड़ी देर में सब खेल खत्म हो जायगा। जैसा तेज दिखाया था, अब वैसा ही उसका फल भोग रहा है।'

राधा के हृदय में जैसे किसी ने तीर चुभो दिया हो। जरा दम लेकर बोली, 'चल हट, क्या बकती है, लँगड़ी कहीं की।'

सुग्गी हँसी, 'सच कहती हूँ। मन-ही-मन तो तू जरूर खुश हो रही होगी, मैं जानती हूँ। ठीक कहती हूँ न ? सुबह से ही उसकी तबीयत खराब है। सारी बस्ती को खबर है और तुझे जैसे कुछ पता ही नहीं ! अरी, क्यों बनती है ?'

अपनी कोठरी का ताला खोले बिना ही राधा ने नन्दू की कोठरी की ओर कदम बढ़ाये। दरवाजे पर और भी कई पास-पड़ोसी खड़े हुए थे। सोनिया, बिरौनी और गंगा की माँ भी है।

जमीन पर बिछौना बिछा हुआ है, उस पर आँखें बन्द किये मृतक की भाँति बच्चा पड़ा हुआ है। एक कोने में नन्दू उदास भाव से बैठा हुआ है।

राधा कोठरी में घुसने ही वाली थी कि नन्दू गरज उठा, 'खबरदार, ओ राँड जो भीतर घुसी। अगर जरा भी आगे बढ़ी, तो टँगड़ी तोड़ दूंगा।' और यह कहकर हाथ में लाठी लिये हुए नन्दू वाकई आगे बढ़ा।

लेकिन राधा ने इसकी कतई परवाह नहीं की। बगल से कतराकर आगे बढ़ते-बढ़ते बोली, 'टँगड़ी तोड़ देना, कलमुँहे ! खाली टँगड़ी ही क्यों—सब कुछ तोड़ दे, मार डाल।'

यह कहते हुए राधा बच्चे के बिछौने के पास पहुँच गई। बच्चे के सिर पर हाथ फेरते हुए जोर से चिल्लायी, 'हाय भगवान, यह क्या हुआ !'

कुछ देर बाद राधा ने अपने आँसू अपने आप ही पोंछे। फिर नन्दू की ओर देखते हुए रुँधे स्वर में बोली, 'अभी साँस चल रही है। अरे कलमुँहे, तू यहाँ हाथ-पर-हाथ धरे क्यों बैठा है? जा, डाक्टर को बुला।'

उदास भाव से नन्दू ने उत्तर दिया, 'अब इसका समय पूरा हो चुका है। डाक्टर बुलाने से भी क्या होगा?'

मुँह बनाते हुए राधा ने कहा, 'हूँ, डाक्टर से क्या होगा? यह क्या कोई तेरा कुत्ता है या बिल्ली है या तोता, जो डाक्टर को नहीं बुलायेगा? वैरागी की तरह सिर्फ बैठा-बैठा देखता रहेगा? जा, फौरन डाक्टर को ला, नहीं तो मैं तुझे चैन से नहीं बैठने दूँगी—यह समझ ले।'

'खाली डाक्टर-डाक्टर चिल्ला रही है। मेरे कहने से ही तो डाक्टर नहीं टपक पड़ेगा। उसकी फीस देने के लिए रुपये कहाँ हैं?'

'मर्द होकर तुझे यह कहते हुए शर्म नहीं आती रे कलमुँहे? चोरी कर, डाका डाल, लेकिन चाहे जैसे भी हो और जहाँ से भी हो, रुपया लाओ।'

आज भी राधा ने अपने आँचल की गाँठ खोली। कुल पौने बारह आने मिले हैं। लेकिन इतने में तो डाक्टर नहीं आ सकता। राधा ने अपनी कोठरी की चाबी नन्दू के सामने फेंकते हुए कहा, 'जा रे मक्खी-चूस, अपना तो तू एक धेला भी खर्च नहीं करेगा। मेरी कोठरी में जो दो-चार भांडे हैं, उन्हें बेचकर ही डाक्टर बुला ला। अब मैं यहाँ से नहीं हिलूंगी।'

नन्दू ने राधा की चाबी नहीं उठाई। बहुत शौक से खरीदा हुआ अपना पीतल का लोटा उठाकर चला।

गंगा की माँ बोली, 'इसे कहाँ बेचता फिरेगा। ला, मैं गिरवी रख कर चार रुपये दे देती हूँ। हाँ, आठ आना महीना सूद लगेगा। रुपये चुकाकर अपनी चीज छुड़ा ले जाना।'

कुछ देर बाद नन्दू बाहर जाते-जाते राधा की ओर मुखातिब हो कर बोला, 'तेरा मन रखने के लिए डाक्टर को बुला देता हूँ। लेकिन

सच पूछो, तो इतनी देर हो चुकी है कि अब डाक्टर भी कुछ नहीं कर सकता। खैर, जो दंड भुगतना बदा है, वह तो भोगना ही पड़ेगा।'

करीब पन्द्रह-बीस मिनट बाद मुहल्ले का डाक्टर आया। बच्चे को देखा और दवा लिख दी। उनके पीछे-पीछे बाहर निकलते हुए नन्दू ने फीस दी और पूछा, 'डाक्टर साहब, कुछ उम्मीद है?'

अपना चेहरा गंभीर बनाकर डाक्टर ने जवाब दिया, 'अभी कुछ नहीं कहा जा सकता। हालत नाजुक है।'

और भी दो दिन इसी तरह कट गये। जिन्दगी और मौत के बीच बच्चा झूलता रहा। डाक्टर ने दो बार दवा भी बदली। बच्चे को गोद में लिये राधा इन दो दिनों तक अचल और स्थिर बैठी रही। भीख माँगने नहीं गयी, अपनी कोठरी में भी नहीं गयी। कुछ खाया-पिया भी नहीं।

बस्ती के सब लोगों ने कहा, 'अपने सगे बच्चे के लिए भी कोई इतना नहीं करता।'

जमाल बोला, 'भाई, इस बच्चे से इनकी रोजी जो चलती है। इसलिए अपने सगे बच्चे से भी ज्यादा स्नेह है। पेट से निकलते ही इस बच्चे ने पैसा पैदा करना जो शुरू कर दिया था। इसकी ही सेवा नहीं करेगी, तो फिर और किसकी करेगी?'

तीसरे दिन हालत में कुछ सुधार हुआ। चौथे दिन डाक्टर के गंभीर और रूखे चेहरे पर भी कुछ मुस्कुराहट नजर आयी। बोले, 'खतरे से पार हो गया, अब डर की कोई बात नहीं है। लेकिन कम से कम दो महीने तक इसकी ऐसी ही देखभाल करनी होगी। बहुत हिफाजत की जरूरत है। अच्छी तरह खिलाने-पिलाने की भी जरूरत है। समझीं, बच्चे की माँ।'

जरा मुस्कराते हुए राधा ने जवाब दिया, 'मैं तो अच्छी तरह समझ गयी, डाक्टर साहब। पर आप जरा बच्चे के इस लापरवाह बाप को भी अच्छी तरह समझा दीजिए।'

डाक्टर साहब ने हँसते हुए फीस के रुपये अपनी जेब में डाले और चल दिये।

इसके बाद भी दूसरे दिन राधा अपनी कोठरी में नहीं गयी। बच्चे के पास ही पड़कर सो गयी। एक बीड़ी जलाकर बच्चे के पास दूसरी ओर लेटते हुए नन्दू ने पूछा, 'क्यों री, तेरा क्या इरादा है? यहाँ मौरूसी पट्टा जमाकर बैठ गयी है, टस से मस होने का नाम नहीं। भीख माँगने क्यों नहीं जाती?'

राधा ने जवाब दिया, 'डाक्टर साहब क्या कह गये, सुना नहीं? बच्चे को ऐसी हालत में छोड़कर अब मैं कहीं भी नहीं जा सकती। दो महीने तक मैं यहाँ से हिलूँगी-डुलूँगी भी नहीं।'

'हिलेगी-डुलेगी तो नहीं, लेकिन डाक्टर साहब की बातों से पेट तो नहीं भरेगा।'

'तो तू फिर कोई ऐसा काम कर न, जिससे पेट भरे।'

'तू अगर मेरा साथ दे, तो करूँगा, निश्चय ही करूँगा। अगर तू मेरी जोरू की तरह रहे...'

अन्धकार में राधा धीरे-धीरे मुस्कुरायी, 'हुश, मुझे क्या पड़ी है, जो तेरी जोरू की तरह रहूँगी। जैसा तेरा रूप और जैसे तेरे गुण...'

नन्दू बोला, 'मेरी शक्ल का तू चाहे जितना मजाक बना ले, लेकिन आदतों के लिए आज कुछ न कह। आज क्या हुआ, जानती है?'

'बता न, आज क्या तीर मारा?'

'सुन, आज मैं अपने साथियों से उधार माँगने गया। लेकिन किसी साले ने भी एक धेला नहीं दिया। एक दूकान के सामने जाकर खड़ा हुआ। लेकिन वह दूकानदार मुझे पहचानता था। देखते ही मारने

दौड़ा। अब आगे बढ़ने का मेरा साहस नहीं हुआ। सोचा, अगर उसने मुझे पुलिस से पकड़वा दिया, तो इस बीमार बच्चे के साथ अकेली तू क्या करेगी। क्या करूँ, क्या करूँ—यह सोच ही रहा था। इतने में सामने जो नजर पड़ी, तो क्या देखता हूँ कि एक कोट-पैंटवाला बाबू बहुत बड़ा संदूक लिये आ रहा है। संदूक भारी था, इसलिए चल नहीं पा रहा था। पसीने से तर और बुरी तरह हाँप रहा था। आस-पास कोई सवारी भी नहीं थी। मैंने आगे बढ़कर कहा, लाइये साहब, मैं ले चलता हूँ। उन्होंने कहा, ले जा सकेगा? मैंने कहा, क्यों नहीं। संदूक भारी था और पूरे दो मील ले जाना पड़ा। उन्होंने खुश होकर मुझे आठ आने मजूरी दी। मैंने कहा—हुजूर, आठ आने नहीं, पूरे सोलह आने दीजिए। मेरा बच्चा बहुत बीमार है। उसके लिए दवा खरीदनी है। और कुछ दे दें, तो बड़ी मेहरबानी होगी।' नन्दू यह कहते-कहते क्षण भर के लिए चुप हो गया।

राधा बहुत तन्मयता से सुन रही थी। बोली, 'फिर?'

नन्दू की बात सुनकर वह साहब कुछ देर तक आश्चर्य से उसकी ओर देखते रहे। इसके बाद अपने मकान में झाड़ू-बुहारी दिलवायी तथा और भी दो-चार छोटे-मोटे काम-काज कराकर उन्होंने उसे आठ आने और दे दिये। कल फिर बुलाया है। कहा है, एक चिट्ठी देकर कारखाने में भेज देंगे, वहाँ पक्की नौकरी मिल जायगी।

राधा ने पूछा, 'सच कहता है?'

नन्दू बोला, 'हाँ, सच कहता हूँ। यदि विश्वास नहीं होता, तो लड़के की कसम खाकर कह सकता हूँ।'

राधा जरा घबड़ा गयी, 'नहीं, नहीं, रहने दे। बीमार बच्चे की कसम खाने की जरूरत नहीं। मुझे ऐसे ही विश्वास हो गया।'

फिर कुछ देर चुप रहकर बोली, 'आज तू लड़के का मौसा नहीं है, सच में तू उसका बाप हो गया है।'

'तेरे मानने से क्या होगा, राधा। बड़ा होकर यदि रतन स्वीकार न करे। देखने-सुनने में तो यह सुन्दर ही होगा। इसकी सूरत-शक्ल हम लोगों जैसी थोड़े ही होगी। बड़ा होकर अगर यह हम लोगों को अपना माँ-बाप न माने, हमारी बात पर विश्वास न करे, हमें पसन्द न करे?'

लड़के को एक ओर सरकाकर राधा ने धीरे-धीरे नन्दू के शरीर पर हाथ रखा। फिर स्नेह से हाथ फेरते हुए बहुत ही विश्वास के स्वर में कहा, 'करेगा—विश्वास करेगा। हम ऐसे बन जायँगे कि उसे मानना ही पड़ेगा, ऐसी तरह से रहेंगे कि वह पसन्द करे।'

यह भी एक मुसीबत है !

एक ही मुहल्ले में रहने पर मेल-मुलाकात हो ही जाती है।

सड़क के नुक्कड़ पर पेड़ के नीचे बस के इन्तजार में खड़ा था। वहीं पहली बार हम लोगों का आमना-सामना हुआ और तुरन्त ही परिचय हो गया।

चड्ढा ने अपनी सुन्दर बेंत की छड़ी से संकेत करते हुए कहा—वह है, वह नज़र आता है न? वहाँ आप किसी से भी पूछ लें, कोई भी हरवंश-लाल चड्ढा का मकान बता देगा। आप अवश्य किसी दिन दर्शन दीजिए।

मिसेज़ चड्ढा ने अपने छोटे-से नीलाभ रूमाल से माथा पोंछा। बोली—यह भी एक संयोग है कि आप कहानियाँ लिखते हैं और हम इतने नज़दीक रहते हैं।—फिर बहुत आग्रह और आत्मीयता से बोली—कल शाम की चाय हमारे यहाँ रही।

मुँह से पाइप निकालते हुए चड्ढा ने कहा—यह सच है कि बैंक के काम से मुझे फ़ुर्सत नहीं मिलती, लेकिन साहित्य पढ़ने का मुझे नशा है। साहित्यिकों से मिलकर मुझे बहुत खुशी होती है। आप अवश्य पधारें, आभार मानूंगा।

अन्दाज़ ग़लत नहीं निकला। स्टेनलेस स्टील की एक बहुत सुन्दर ट्रे में गर्मागर्म कटलेट, चाप, पोच और चाय सामने हाज़िर करती हुई निर्मला बोली—मुझपर एक कहानी लिखनी होगी, पहले से ही कहे देती हूँ।

—वाह-वाह!—उधर से ज़ोर से हँसते हुए चड्ढा सामने आकर खड़ा हो गया। सोने का सिगरेट-केस मेरी ओर बढ़ाते हुए बोला—तुम मुझसे ज्यादा सुन्दर हो, तो क्या इसी कारण ये पहले तुम पर कहानी लिखेंगे? कभी नहीं! लेखक महोदय, पहले मुझ पर एक कहानी लिखिए, बड़ी अच्छी बनेगी।

विराटकाय, काले भालू की तरह लोमशावृत्त चड्ढा की बगल में ज्योत्सना की रेखा की तरह निर्मला साफ-सुथरी और खिली हुई दिखाई दे रही थी।

—मुझपर लिखने से कोई मामूली कहानी नहीं होगी। इतनी घटनाएँ और दिलचस्प बातें हैं मेरे जीवन में!—चड्ढा ने पत्नी को पीछे करते हुए आगे खड़े होने की कोशिश की।

—हूँ ! तुम तो सिर्फ़ एक ही बात जानते हो, बैंक ! बस, रात-दिन बैंक की ही बातें हैं। चौबीस घण्टे सिर्फ़ एक ही चिन्ता, एक ही रट ! वहाँ भला ऐसी कौन-सी घटनाएँ होती हैं, जो उनपर कहानी लिखी जा सकती है ? जरा हटो, पंखा तो खोल दूँ।—पंखा खोलने के लिए निर्मला ने परी के पर-जैसा अपना शुभ्र, सुन्दर हाथ स्विच बोर्ड की ओर बढ़ाया।

चड्ढा ने कुछ गंभीर स्वर में उत्तर दिया—तुमने कीमती सलवार का सूट पहन रखा है, अंगुलियों में हीरे की अँगूठियाँ हैं और घर में आराम और सुख भोगते हुए तुम्हारी सुन्दरता निखरती जा रही है, इन सब बातों की वजह से ही तुम प्रथम श्रेणी की कहानी की नायिका बन सकती हो, मैं यह नहीं मानता। आपका क्या खयाल है, कहानी-लेखक साहब ?

बिना कोई जवाब दिये मैं सिर्फ़ मुस्करा दिया। तिरछी नजरों से निर्मला की अँगुलियों में हीरे की अँगूठियाँ देखीं और फिर चड्ढा के सोने के केस से एक सिगरेट उठा ली।

इधर चाय की मेज पर दाम्पत्य कलह होने लगी।

—तुममें तो कहानी के उपादान जरा भी नहीं है।

—अगर सतीश बाबू तुम पर कहानी लिखने की कोशिश भी करेंगे, तो वह व्यर्थ का परिश्रम होगा, मैं स्टाम्प लगाकर यह लिख सकता हूँ ! सुन्दर बाहुओं को बंकिम कर निर्मला अपना जूड़ा ठीक करने लगी। झगड़े के वक्त औरतों का जूड़ा ढीला होकर खुल जाता है, शास्त्र-वचन है।

और मेरी एक सिगरेट भी अभी खत्म न हो पायी थी कि इस बीच चड्ढा ने तीन सिगरेटें खत्मकर ऐश-ट्रे में डाल दीं। मुझे बार-बार तंग करने लगा कि पहले उसी पर कहानी लिखी जाय। चड्ढा की यह बहुत पुरानी इच्छा है। हाँ, लेखक अगर जरूरी समझे, तो बाद में निर्मला पर भी एक छोटी-मोटी कहानी लिख डाले। लेकिन चड्ढा को उसमें कोई उत्साह नहीं है। निर्मला पर लिखी हुई कहानी कहानी ही नहीं होगी।

दूसरे की कहानी सुनने की तरह स्वयं को कहानी में देखना, देखने का यह आग्रह हमारे मुहल्ले के बैंक मैनेजर हरवंशलाल चड्ढा और उनकी पत्नी में कितना प्रबल है !

—ऊँ-हुँ ! एक ही कहानी में दोनों को रखने पर ठीक नहीं होगा। कहानी नहीं बनेगी।—निर्मला ने दूसरे दिन आपत्ति की।

चड्ढा ने हँसते हुए कहा—हम दोनों में एक-सी या सामान्य बात आप क्या पाते हैं, जो मेरी कहानी में उसे रखेंगे ? इन सब ख्यालों को छोड़कर आप नये ढंग से सोचिये, सतीश बाबू।

—साग-सब्जी में ज्यादा मिर्च-खटाई खाने की इन्हें आदत है, जाड़ों में सिर ढँककर ये सोते हैं, सिनेमा के बेहद शौकीन, यानी जो सब बातें मेरी रुचि के सम्पूर्ण विपरीत हैं। अतः,—निर्मला ने जोर से सिर हिलाते हुए कहा—इनको और मुझको मिलाकर एक अच्छी कहानी बनेगी, ऐसी दुराशा आप क्यों करते हैं ?

—सच है,—चड्ढा जोर से हँसा—मैं रूमाल में बहुत तेज सेन्ट लगाता हूँ और निर्मला के रूमाल में अगर वह सेन्ट भूल से जरा-सा भी लग जाय, तो सात बार ड्राई क्लिनिंग में धुलता है। रेडियो में 'आज के समाचार' शुरू होते ही मेरे सिर में दर्द हो जाता है, और रेडियो सीलोन खोलते ही निर्मला का सिर घूमने लगता है। इसलिए...

दोनों की ओर देखते हुए मैं हँसता रहा। सोचता हूँ, इसमें शक़ नहीं कि इस दम्पत्ति को एक ही कहानी में चित्रित करना मुसीबत है।

—मैं सेन्टीमेन्ट पसन्द नहीं करता, और वह...—चड्ढा अपनी बात पूरी भी नहीं कर सका कि इतने में ही निर्मला तेज आवाज़ में बोली—ठीक है, लेकिन इसका उल्टा। किसी-किसी बात में ये इतने बेचैन और चंचल हो उठते हैं कि बिना स्वयं देखे कोई विश्वास नहीं करेगा।

चंचल या बेचैन हुए बिना ही स्वाभाविक रूप में चड्ढा ने उत्तर दिया—हाथ-कंगन को आरसी क्या? अभी तो परिचय ही हुआ है। जरा आठ-दस बार यहाँ आइए-जाइए। कौन कोमल है और कौन कठोर, कहानी-लेखक की नजरों से यह छिपा नहीं रहेगा। आप स्वयं देख लीजिएगा।

कहा—ठीक है, लेकिन अब आप लोग इस बात पर झगड़ें नहीं।

उस दिन हल्का नाश्ता नहीं था। चाय, कटलेट और चाप के बदले खीर, पिस्ते की बर्फी, रसमलाई और कलाकन्द आया।

तश्तरियों को देखकर चड्ढा ने मुस्कराते हुए टिप्पणी की—इनके बदले तो सींख कबाब, पुलाव और चिकन होता, तो पार्टी अच्छी तरह जमती। तब वास्तव में कहानी का वातावरण तैयार हो जाता।

भौंहें टेढ़ी कर निर्मला ने कहा—नहीं। उन सब आमिष चीजों से हिन्दी के लेखक का रोज़-रोज़ सम्मान जँचता नहीं।

—ओ! इसी कारण कहानी-लेखक को मिठाई खिलाकर एक मधुर वातावरण तैयार कर रही हो?

—अगर ऐसा ही है, तो इसमें बुराई क्या?—चम्मच से अपने मुँह में थोड़ी सी खीर डालते हुए निर्मला ने मेरी ओर देखा।

—लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि यदि तुम पर इन्होंने कभी कोई कहानी लिखी, तो उसमें प्रारम्भ से अन्त तक मिठास-ही-मिठास होगी।—रसमलाई खाते-खाते चड्ढा जोर से हँसा।

—मिठास न भी हो, तो भी तुम्हारी तरह कसाई-जैसा मेरा चरित्र-चित्रण नहीं होगा। सारे दिन सिर्फ मटन और फाउल, बीफ और हैम... तुम इतना मांस खाते हो!—होंठों को टेढ़ा करके और दाँतों को कुछ अजीब ढंग से किटकिटाते हुए निर्मला ने 'मांस' शब्द का कुछ इस ढंग से उच्चारण किया कि कहानी-लेखक होने के नाते मैंने उसका सोलह आना उपभोग किया।

—हो सकता है कि मेरा खाना पशुओं जैसा हो, लेकिन हृदय फूल की तरह कोमल है। तुम्हारे खाने में मधु लिपटा हुआ है, लेकिन हृदय नामक जो चीज़ है, वह ब्लेड की धार-जैसी तेज़ और निर्मम नहीं है, यह ही कौन जानता है!

—यह तुम्हें समझाने या बताने की ज़रूरत नहीं होगी, कहानी-लेखक स्वयं ही देख लेंगे कि कौन क्या है?—कहकर निर्मला ने दो रसमलाइयाँ मेरी तश्तरी में डाल दीं—आप तो सिर्फ़ बातें सुनने में लगे हुए हैं, कुछ खाइए भी तो, लेखक महोदय!

विदाई के समय सीढ़ी पर खड़े-खड़े अवश्य उन दोनों ने बहस या झगड़ा नहीं किया। चलते समय साग्रह अनुरोध करते हुए दोनों ने नम्र शब्द में निवेदन किया—मेरे बारे में आपको एक कहानी लिखनी ही होगी!

इतनी ज्यादा खातिरदारी और सुस्वादु भोजन कराकर उन्होंने क्रमशः मुझे बहुत अधिक ऋणी कर दिया है। अतः अपनी कृतज्ञता जाहिर करते हुए शीघ्र ही दोनों पर अलग-अलग कहानियाँ लिखने का वायदा कर मैं उस दिन चला आया।

वस्तुतः कहानी के बारे में सोचते ही निर्मला के तरह-तरह के सलवार के सूट, हीरे की अँगूठियाँ, क्रीम रंग की उनकी विशाल और भव्य कोठी, रंग-बिरंगे फूलों से सजा हुआ बागीचा और चड्ढा का प्रति क्षण दुअन्नी-चवन्नी जला देना, यानी क़ीमती सिगरेट के दो-चार कश लेकर फेंक देना एवं फिर एक नई सिगरेट जलाने के चित्र की अपेक्षा वह चित्र ही मेरी आँखों के सामने ज्यादा नाच उठा, उन दोनों की दो कहानियों में स्वयं को देखने और पाने की अदम्य इच्छा! मैं परेशान हो गया। नहीं, यह सिर्फ विलास नहीं है। एक अच्छी और सुन्दर मोटर या नये डिजाइन का पियानो रखने की इच्छा से इस इच्छा की तुलना नहीं हो सकती।

उस दिन मैंने ग़ौर किया था कि चड्ढा चालीस पार कर चुका है। निर्मला के चमकते और पालिश किये हुए गालों में एक-दो रेखाएँ भी नजर आयी थीं। मानो सुख, आराम और समृद्धि की पूर्णता में पहुँचकर एकाएक उन दोनों को यह ख़याल हुआ कि हम क्या हैं, हम कौन हैं, यह तो मालूम ही नहीं हुआ। दो कहानियों में दोनों की ठीक-ठीक प्रकृति एवं रुचि का आप चित्रण कर दीजिए, अन्यथा शान्ति नहीं मिलेगी। यही बात है! कहानी के लिए मैं सोच में पड़ गया।

तीसरे दिन बैठक जोरदार हुई।

गुड फ्राइडे, इसलिए बैंक बन्द था।

उस दिन चड्ढा के इच्छानुसार ही मांस-पुलाव का आहार हुआ।

वाह! निर्मला ने बहुत सुन्दर खाना बनाया था।

अच्छी तरह खा-पीकर हम तीनों गप्पें लड़ाने बैठे। मैं और चड्ढा एक सोफे पर। हम दोनों ही सिगरेट फूंक रहे थे। सामने ही एक गद्देदार आरामकुर्सी पर लेटे-लेटे निर्मला पान चबा रही थी। शायद उसके मुंह से ही कस्तूरी की खुशबू आ रही थी।

आराम से गप्पें लड़ाने का बहुत मौजूं वातावरण था।

दरवाज़े और खिड़कियों पर लगे हुए आसमानी रंग के पर्दे हवा से धीरे-धीरे उड़ रहे थे।

बड़ी शान से चड्ढा बोला—मुझपर कहानी लिख डालिए, तो मैं आपको एक बहुत सुन्दर चीज भेंट करूँगा।

—तुम क्या प्रेजेन्ट दोगे?—निर्मला जरा सीधी बैठ गयी—बहुत होगा तो एक पार्कर पेन।

—अच्छा, यह बताओ, तुम क्या प्रेजेन्ट करोगी? यदि तुम पर कहानी लिख दी गयी, तो लेखक को कुछ-न-कुछ देकर सम्मानित तो करना ही होगा न?—कुछ ईर्ष्या-भरी दृष्टिसे चड्ढाने अपनी पत्नी की ओर देखा।

—मैं उपहार दूँगी अपनी हीरे की यह अँगूठी !—हीरे की तरह हँसी हँसते हुए निर्मला ने प्रत्युत्तर दिया ।

मेरा दिल जोर-जोर से धक्-धक् कर रहा था । आह, अभी फौरन ही कोई कहानी क्यों नहीं बन जाती !

पर, इच्छा करने से ही क्या दिमाग में कहानी आ जाती है ? कहानी तो किसी की इच्छा की गुलाम नहीं है । अतः उस समय कहानी न सोचकर कहानी की कीमत पर पति-पत्नी का झगड़ा देखने लगा । बाहर अप्रैल की धूप सुनहरी होकर जूही की लता पर चमक रही थी ।

एक कहानी के लिए वे दोनों मुझे क्या नहीं देने को तैयार हैं । पेन, अँगूठी, ड्राइंग-रूम सजाने का फर्नीचर और कौन जाने एक छोटी-सी कुटिया बनाने लायक नकद रुपया भी दे दें !

आखिरी 'बीट' किसने दी, यह पता नहीं । कुछ देर बाद मैंने देखा कि दोनों ही चुप हैं । ऊँघ रहे हैं ।

इतना अच्छा खाना और ऐसा आराम ! मुझे भी नींद आ रही थी ।

कितनी देर तक सोता रहा, पता नहीं ।

एक आवाज़ से हम तीनों की नींद एक साथ ही खुली । हम तीनों ने ही आँखें मलते हुए देखा, एक बड़ा-सा भँवरा आवाज करता हुआ चक्कर काट रहा है ।

भँवरा देखकर चड्ढा का डर दूर हुआ । कहा—नींद में मुझे ऐसा लगा, जैसे बम फटा हो ।

निर्मला डरी तो नहीं थी, लेकिन एकाएक नींद टूट जाने से उसे कुछ बुरा जरूर लगा था, ऐसा भाव उसके चेहरे पर था । भँवरा को देखकर जरा हँसी । बोली—मैंने क्या सपना देखा कि नीचे बागीचे में जाने कहाँ से दौड़ता हुआ एक साँड़ घुस आया है और माली को मार रहा है । ऊफ़ ! उसका कैसा भीषण गर्जन था !

यह सुनकर चड्ढा हँसा—और हाँ, आप, आपने क्या समझा था, लेखक साहब ?

मैं चुप। फौरन ही कोई जवाब नहीं सूझा। कारण, ठीक उसी समय मेरे दिमाग में शायद कहानी घूम रही थी।

इस बीच भँवरा उड़ता हुआ खिड़की से बाहर चला गया।

भँवरे की गुन-गुन आवाज बन्द होते ही मानो दोनों फिर कुछ बेचैन-से हो गये। जिस तरफ से भँवरा गया था, उस ओर आँखें फाड़-फाड़कर देख रहे थे। यह मैंने ग़ौर किया। कहानी लिखने की मशाल जलाकर मैंने सतर्कता से पैर बढ़ाये—कुछ भी कहिए, मिसेज चड्ढा, आपकी यह सुन्दर सजी-सजायी कोठी बहुत सूनी-सूनी लगती है। यहाँ मैं किसी शिशु को नहीं देखता। चारों ओर एकदम सन्नाटा है! अजीब खामोशी है!

निर्मला से यह कहकर मैंने चड्ढा की ओर देखा—आपका क्या ख़याल है, मि० चड्ढा ?

—वाह, भई वाह! अब तुम्हें कहानी सूझी है। निर्मला, कहो, तुम पर ही यह कहानी लिखेंगे। लेखक को यह बता दो कि तुमने माँ क्यों नहीं बनना चाहा ?—चड्ढा इस बार ज़ोर से नहीं हँसा।

निर्मला बोली—क्यों, तुम पर भी सुन्दर कहानी लिखी जा सकती है। तुमने भी तो बाप नहीं बनना चाहा।

सोने के सिगरेट-केस से एक सिगरेट निकालकर मैंने जलायी।

—नहीं-नहीं,—मैंने उन दोनों को अभय दिया—यह तो आपस की बात है, इससे दोनों का सम्बन्ध है। इसलिए यह डर नहीं है कि सिर्फ एक पर ही कहानी लिखूंगा। और फिर, यह विषय बहुत पुराना है। ऐसे ही, समझ लीजिए, मित्रता के नाते पूछ बैठा, कारण क्या है ?

—कारण और क्या है, लेखक—कुछ उपेक्षा से चड्ढा ने कहा—हम तो अपना खून पसीना एक कर कमाते हैं खाने-पीने और मौज उड़ाने

के लिए। बेमतलब जन-संख्या बढ़ाने से क्या फायदा? जरा सोचिए, भगवान ऐसा न करें, इस गृहस्थी में बाल-बच्चे आयें और उनके बालिग होने से पहले ही मेरी आँखें मूँद गयीं, एक तो पहले से ही रक्तचाप का रोगी हूँ, या कल को मेरा बैंक फेल हो जाय, तब इच्छाओं की हत्या कर यह जोड़ा-जाड़ा धन कितने दिन चलेगा? इसलिए यह झंझट मैं नहीं पालता।

—और मैं शारीरिक कष्ट बर्दाश्त नहीं कर सकती, इसीलिए बचाती आयी हूँ। और दूसरा कोई कारण नहीं है।—निर्मला ने कुछ वक्र नयनों से मेरी ओर देखा—इसे केन्द्र बनाकर कहानी लिखेंगे तो अच्छी नहीं बनेगी।

चड्ढा ने अपनी आँखें बड़ी करते हुए सिगरेट जलायी। दोनों ही जैसे कुछ विशेष गंभीर हो गये।

यह प्रसंग छेड़कर मानो मैंने कसूर किया है, इस ढंग से अपने अपराध की माफ़ी के लिए और भी दो बार सिर हिलाकर कहा—यह भी कोई विषय है। आजकल भला इस पर कौन कहानी लिखता है?

—बच्चा तो बहुत दूर की बात है, ये तो यहाँ एक कुत्ता तक रखने को तैयार नहीं।—निर्मला ने उँगली से पति की ओर इशारा किया।

कुछ हँसते हुए मैंने कहा—हाँ, एक कुत्ता तो आप बड़े मजे में रख सकते हैं, बहुत खाली-खाली लगता है।

नाक से धुआँ निकालते हुए चड्ढा ने पहले पत्नी की ओर और फिर मेरी तरफ देखा—खतरा! मान लीजिए, किसी कारण से अगर कल को कुत्ता पागल हो जाय और आपको काट खाय, तब? वह पशु है। कुछ समझता थोड़े ही है। मनुष्य होते हुए आप इस खतरे को पालने की सलाह किस ख्याल से दे रहे हैं? ट्राम, बस, बिजली, आग, चोरी-डकैती और पाकेटमारी से क्या अभी शहर में कम दुर्घटनाएँ हो रही हैं! यह सब जानते-बूझते हुए भी क्या मैं दुर्घटना का एक और नया केन्द्र अपने मकान में खोलूँगा?

मैंने निर्मला की ओर देखा।

—सच तो यह है, लेखक महाशय, कि मुझे कुत्ते-बिल्ली से सख्त नफ़रत है। हालाँकि एक्सीडेन्ट-फेक्सीडेन्ट की तो मैं कतई परवाह नहीं करती। वैसे, हाँ, ये बिल्ली-कुत्ते हैं तो गन्दे जानवर ही।

—कुत्ता पालूँ? कुछ दिनों पहले मेरा भाँजा यहाँ एक मैना छोड़ गया था। बरामदे में लटकाते हुए बोला—मामाजी, मामीजी! आपके कोई बाल-बच्चा तो है नहीं, इसलिए मैं अपनी मैना छोड़ जाता हूँ। इसे प्यार से रखना।

बात खत्म कर चड्ढा जैसे कुछ रुक-रुककर हँसा।

गंभीर वातावरण में कुछ सरसता आयी। खुश होते हुए खँखार कर मैंने फौरन पूछा—वह मैना कहाँ है? यहाँ तो कहीं नजर नहीं आती।

—मैना कहाँ है?—चड्ढा की आवाज जैसे फिर कुछ भारी हो गयी—अरे भाई, पंजाब मेल उलटने पर भी इतना शोर-गुल नहीं होता, जितना वह करती थी। सारी रात तेज आवाज में टें-टें करती रहती थी। दो रात तो मैं सोते-सोते डरकर उठ बैठा।

सोच रहा था कि इतना खुशहाल और अगाध सुख का मालिक होते हुए भी चड्ढा एक कहानी का नायक बनने के लिए इतना बेचैन क्यों है? बड़ी मुश्किल से मैंने अपनी हँसी रोकी।

—वह मैना शायद आपने वापस भेज दी? या और किसी को दे दी?

—अजी, दूसरे को देने पर भी वह वहाँ नहीं रही,—एक लम्बी साँस छोड़ते हुए निर्मला ने गंभीर भाव से उत्तर दिया—आठ-दस दिन में ही वह बहुत हिल गयी थी। दो बार इनके एक मित्र ले गये, दोनों बार ही उड़कर वह यहाँ चली आयी।

निर्मला की आँखों का रंग देखकर ऐसा लगा, जैसे इस सुख और विलास-प्रियता में भी कहीं कुछ मेघ है। मुझे कुछ सहानुभूति हुई। प्रश्न किया—फिर क्या हुआ?

—वह मैना बड़ी सुन्दर थी, रखी जा सकती थी।—निर्मला ने कहा—लेकिन क्या करें, दो दिन में ही उसने सारा घर गन्दा कर दिया। पकड़ में नहीं आती थी, इसलिए उसे पिंजड़े में बन्द करके नहीं रख सके।

—आखिरी दो दिन तो सारे मकान में, कमरों में उड़-उड़कर ऐसी आफ़त मचायी कि कुछ न पूछिए।

—एक बल्ब तोड़ दिया, यह भी बताओ।—पत्नी की ओर बिना देखे ही चड्ढा मुझ से बोला—ज़ीने पर मैं चढ़ रहा था। उड़ते-उड़ते वह दीवार से टकरायी और बल्ब पर बैठ गयी। ऊफ, उस दिन मैं बच गया, नहीं तो बल्ब मेरे सिर पर ही टूटता।

एक लम्बी साँस लेकर उन्होंने दूसरी सिगरेट जलायी।

—उसे मारने के लिए तुमने एक और ऐक्सिडेन्ट किया होता, यह क्यों भूल गये?—निर्मला ने तिरछी नजरों से पति को देखा और फिर मेरी ओर देखते हुए मुस्कुराने लगी।

एक निरीह पक्षी की हत्या का सविस्तार वर्णन सुनने की मेरी कतई इच्छा नहीं थी। फिर भी बिना पूछे न रहा गया।

—कैसे?

—इन्होंने निशाना साधकर मैना पर बड़े ज़ोर से चाकू फेंका,—निर्मला ने कहा—दीवार से टकराकर वह चाकू इन पर ही आ रहा। कैसा अच्छा निशाना था, ज़रा सोचिये!

चड्ढा ने सिर हिलाते हुए अपनी गलती मानी—गुस्से में मुझे ख़याल ही नहीं रहा, हालाँकि निर्मला ने वही काम कितनी सरलता से पूरा कर दिया था।

—वह कैसे?—मैंने उन दोनों की ओर देखा।

—निर्मला ने बेसन में जहर मिला दिया था,—मोटी आवाज़ में यह बताकर चड्ढा ने फिर सिगरेट जलायी।

मुझे एकदम चुप देखकर निर्मला जल्दी से बोल उठी—ये कुत्ते-बिल्ली या तोता-मैना पालना हमें अच्छा नहीं लगता। दूर से ही ये अच्छे लगते हैं, सुन्दर होते हैं।

धूप ढल रही थी।

हाथी-दाँत का ताजमहल धूप में चमक रहा था। आलस्य दूर करने के लिए जँभाई लेता हुआ बोला—अच्छा, तो अब इजाज़त हो, आज तो हम लोग बहुत देर तक गप्पें लड़ाते रहे।

—हमारे बारे में कहानी लिखना भूलेंगे तो नहीं! पति-पत्नी दोनों ने एक साथ ही स्मरण कराया।

बोला—भूला नहीं हूँ, कई दिनों से सोच रहा हूँ।

उठने ही वाला था। लेकिन एकाएक बाधा हुई।

चड्डा चीख उठा। निर्मला सोफे पर से उछल पड़ी।

वस्तुतः वह कहाँ से आ गया, यह मेरी समझ में नहीं आया। ऐसे सुन्दर, साफ-सुथरे और काश्मीरी कार्पेट बिछे हुए ड्राइंग-रूम में एक तुच्छ और क्षुद्र तिलचट्टे को देखने पर किसे गुस्सा नहीं आता?

घृणा से अपनी नाक सिकोड़ते हुए निर्मला ने चड्डा की ओर देखा—खड़े-खड़े देख क्या रहे हो? उसे पकड़ो! इतना फ्लिट, फिनाइल, लाइसाल के बाद भी हमारे कमरे में...

पत्नी की फटकार सुनकर शिकारियों-जैसी बहादुरी दिखाते हुए चड्डा ने कूदकर बायें हाथ की मुट्ठी में तिलचट्टे को पकड़ लिया।

मैंने कुछ घबराकर कहा—मर जायगा, खिड़की से बाहर फेंक दीजिए न, किस्सा खत्म हुआ।

—आप लेखक हैं न, तभी तो ऐसा कह रहे हैं, इन घृणित कीड़े-मकोड़ों पर दया दिखा रहे हैं! —निर्मला को मेरी बात बुरी लगी है, उसके कहने के ढंग से यह जाहिर था।

—रोग फैलानेवाला कीड़ा नम्बर वन ! मेडिकल रिपोर्ट का कहना है कि ये ही शहर में सबसे ज्यादा टी० बी०, हैजा और प्लेग फैलाते हैं !

—उत्तेजित हो चड्ढा काँप रहा था। पत्नी की ओर देखते हुए बोला—अब बताओ न, क्या करूँ ? बोलो, इसको कैसे खत्म किया जाय ?

निर्मला क्षण भर सोचती रही।

लेकिन चड्ढा जरा भी धैर्य नहीं रख पा रहा है।

—इस साले को जला दूँ ! —कहते हुए ऐश-ट्रे की ओर उसने अपना हाथ बढ़ाया।

निर्मला हँस पड़ी।

—क्या अक्ल है ! जलाओगे, तो ऐसा धुआँ और बदबू फैलेगी कि मकान में हमारा रहना भी दूभर हो जायगा। लाओ, मुझे दो।

सरल बालक की तरह चड्ढा ने अधमरे तिलचट्टे को पत्नी के हवाले कर दिया। मुट्ठी में दबे रहने की वजह से उसकी आधी जान तो पहले ही निकल चुकी थी।

लेकिन निर्मला ने क्षण भर की भी देरी नहीं की। फौरन ही अपने जूड़े से एक काँटा निकालकर उससे तिलचट्टे को चारों ओर बिधना शुरू किया। दो-एक बार छटपटाकर कीड़ा हमेशा के लिए शान्त हो गया।

—सच ! इन सब कामों में तुम्हारी कोई बराबरी मैं नहीं कर सकता ! अब उत्तेजना नहीं है। खुशी से अपनी आँखें नचाते हुए चड्ढा ने सिगरेट जलायी—तुमने बहुत कायदे से मारा।

निर्मला ने कुछ नहीं कहा—शान्त, स्थिर दृष्टि से विजयिनी की भंगिमा में मेरी ओर देखते हुए मुस्कुरायी।

अब तक मैं मंत्र-मुग्ध की तरह हीरे की अँगूठियों से सजी हुई उसकी अँगुलियों का खेल ही देख रहा था। बहरहाल, उनकी दृष्टि के विनिमय में चुपचाप मुस्कुराकर यही बताने की मैंने चेष्टा की और उधर चड्ढा की हँसी में भी संतोष और तृप्ति झलक रही थी।

—ऐसे क्यों हँस रहे हो?—निर्मला ने कुछ खीझकर पति की ओर देखा।

वह कुछ चकित हुआ। बोला—लेखक महोदय जिस तरह तुम्हें गौर से देख रहे थे, उससे ऐसा लगा कि कहीं वे इसी पर एक कहानी...

—अच्छा, ये बात है!—बहुत सकुचाते हुए निर्मला ने जो मेरी ओर देखा, तो मैंने जोर से सिर हिलाया—अजी, नहीं-नहीं! इन सब बातों पर भी कहीं कहानी लिखी जाती है। धैर्य रखें, मैं बहुत अच्छी कहानी लिखूंगा।

यह कहकर बिना प्रतीक्षा किये ही मैं जल्दी से वहाँ से चल दिया।

हरिसन रोड में उत्तर की ओर जो लम्बी-सी गली है, उसके अन्दर ही रधिया की चना-चिउड़ा और मूंगफली की दुकान है। एक रस्सी में बँधे हुए कुछ अधपके तथा कुछ सड़े हुए केले भी अक्सर दुकान पर लटकते रहते हैं।

खपरैल का मकान है और छोटी-सी दुकान। इसी दुकान के एक कोने में रधिया चना-चिऊड़ा भूंजती रहती है। बिक्री भी अच्छी ही हो जाती है। छोटे-छोटे बच्चों और नौकरों तथा मेहरियों की भीड़ दुकान पर प्रायः ही लगी रहती है।

इस बीच अचानक एक दिन अखबार में लोगों ने उसकी मौत की ख़बर पढ़ी और वे हैरत में आ गये।

चना-चिऊड़ा बेचनेवाली रधिया का मृत्यु-समाचार वाकई अखबार में छपा। शोक-संवाद-स्म्भ के नीचे जहाँ अनेक पतिव्रता, पुण्यात्मा, धर्मात्मा और स्नेहशीला महिलाओं के समाचार प्रकाशित होते हैं वहाँ नहीं; बल्कि 'कोरोनर्स कोर्ट' के स्तम्भ में छपा कि रधिया की हत्या की गयी है।

रधिया बहुत दिनों से इस मुहल्ले में थी। यद्यपि वह विशेष मधुरभाषिणी नहीं थी, फिर भी उसमें कुछ ऐसे गुण थे, जिनकी वजह से सब लोग उसे मानते थे। रधिया में परोपकार की भावना बहुत थी। लोगों की विपत्ति और मुसीबत में वह जो कुछ भी और जितनी मदद कर सकती थी, हमेशा करती थी। मदद देने में वह कभी भी पीछे नहीं रहती थी। इस कारण पास-पड़ोस के बहुत से मकानों में उसका आना-जाना था।

अतः उसकी मृत्यु से बहुतों को दुःख पहुँचा।

लेकिन हत्या का क्या कारण था? उसकी हत्या किसने की? उसने ऐसा क्या अपराध किया था?

रधिया करीब चालीस साल की ही होगी। इस उम्र में भी उसे देखने पर साफ़ मालूम होता था कि जवानी में बहुत सुन्दरी रही होगी। अपने गाँव से इस महानगरी में वह कब आयी, शायद उसे भी यह याद न था और जिसके साथ आयी थी, शायद उसे भी भूल चुकी थी।

इसके बाद तरह-तरह के बहुत से काम करने के पश्चात् उसने इस मुहल्ले में अपनी चना-चिऊड़े की यह दुकान खोली थी। उस वक्त उसका एक लड़का भी था।

यही उसकी गृहस्थी थी—खुद वह और उसका लड़का रामू! एक खपरैल के मकान में उसने दो कमरे किराये पर ले रखे थे, और उन्हीं में वह रहती थी। सामनेवाला कमरा दुकान थी, और भीतर का कमरा उठने-बैठने और सोने के लिए था। दुकान की भट्ठी पर ही उसका खाना बनता था।

रामू करीब अठारह-बीस साल का था। माँ के जैसा तो रंग नहीं था, फिर भी कोई काला नहीं कह सकता था। दुबला-पतला शरीर। कमीज उतार दे, तो पसली की हड्डियाँ गिनी जा सकती थीं। सिर पर छोटे-छोटे बाल। चाय की एक दुकान में काम करता था।

इतनी-सी गृहस्थी थी। फिर रधिया की हत्या कौन करेगा?

कुछ दिनों से माँ-बेटे में लड़ाई हो रही थी।

रामू बहुत कम घर में रहता। दिन के वक्त नहाना-धोना और खाना-पीना चाय की दुकान में ही होता। किसी-किसी दिन दोपहर को थोड़ी देर सोने के लिए घर आ जाता और कभी नहीं भी आता। फिर, शाम को जो निकलता, तो रात को भी नहीं लौटता। कहाँ रहता है, कोई नहीं जानता। कहता—दुकान में ही सोने का भी अच्छा प्रबन्ध है। लेकिन दुकान से उसे जो तनख्वाह मिलती, उसमें से एक पैसा भी माँ को नहीं देता।

चाय की दुकान में क्या हुआ, यह तो पता नहीं। लेकिन इधर कई दिनों से वह दोपहर को नियमित रूप से घर आता था और माँ की खुशामदें किया करता था।

'गली के नुक्कड़ पर जगन्नाथ की चाय की दुकान बिक रही है, जानती हो माँ?'

'क्यों, क्या बात ? दुकान नहीं चलती ?'

'गधा है। नहीं तो ऐसे मौके की दुकान है और फिर भी न चले ? सामने और पीछे तीन कालेज हैं ? अगर कुछ भी बिक्री न हो, तो भी चा-सिगरेट का खर्च तो निकल ही जाना चाहिए।'

'तब फिर वह दुकान क्यों बेच रहा है ?'

'उसे रुपयों की जरूरत है। कहता है, अगर कोई पचास रुपये दे दे, तो वह मेज़-कुर्सी बेच देगा। सुना तुमने ? सिर्फ पचास रुपये में ?"

रधिया अब जवाब नहीं देती।

'अगर मेरे पास रुपये होते, तो मैं ज़रूर खरीद लेता।'

'रुपये क्यों नहीं हैं ? इतने दिनों से काम कर रहे हो, मुझे तो तुमने एक पैसा भी कभी अपने हाथ से नहीं दिया। फिर सब रुपये कहाँ गये ?'

'रुपये बचते ही कहाँ हैं ? और तनख्वाह भी ऐसी कौन-सी ज्यादा मिलती है ?'

'चाहे जितनी भी मिलती हो। खाने का खर्च तो तुम्हें नहीं देना पड़ता।'

'खाने का खर्च न सही, लेकिन और सब दूसरे खर्च तो हैं ही। कपड़े, लत्ते, जूता। दो-चार पैसों की पान-सिगरेट भी चाहिए। फिर बचता ही क्या है ?'

'तब फिर कैसे खरीदोगे ?'

'यही तो मैं भी कह रहा हूँ।'

कुछ दिनों बाद रामू फिर आया और उसने माँ के काम-काज में मदद देनी शुरू की।

'लाओ, कुल्हाड़ी दो। लकड़ियाँ चीर दूँ।'

काफी दिनों पहले रधिया ने लकड़ियाँ खरीदी थीं। इनको चीरने के लिए उसने कई बार रामू की खशामद की थी। लेकिन उसे वक्त

नहीं था। वह हर रोज़ ही एक-न-एक बहाना बनाकर इस काम को टाल देता था। मोटी लकड़ियों की वजह से आग सुलगाने में रधिया को बहुत झींकना पड़ता था। लेकिन रामू को यह जानने-समझने की फ़ुर्सत नहीं थी। उस दिन वह ख़ुद ही लकड़ियाँ चीरने लगा, माँ के बिना कहे ही।

फिर बोला—'कल तुम्हारा कमरा साफ़ कर दूँगा। कैसा गन्दा हो रहा है। तुम इसमें कैसे रहती हो?'

रधिया मन-ही-मन हँसी।

चारों ओर घूमकर रामू कमरे को देखने लगा।

'बिछौने को तो ज़रा देखो! कितने दिनों से चद्दर नहीं धुली है?'

'बिछौने पर क्या मैं सोती हूँ, जो चद्दर को साफ़ करूँ?'

'माना कि तुम नहीं सोती हो, फिर भी चद्दर तो साफ रहनी चाहिये।'

'कब धोऊँ? रात बीतते न बीतते तो मैं भट्ठी के सामने आ बैठती हूँ और फिर दोपहर को तीन बजे तक छुट्टी नहीं मिलती। फिर खाने के बाद थोड़ा आलस्य आ जाता है। लेकिन लेट भी नहीं पाती। दस दफ़ा उठकर तो खरीददारों को सौदा देना पड़ता है। कुछ देखने-सुनने की फ़ुर्सत ही कहाँ मिलती है?'

'अच्छा, साबुन है?'

'शायद होगा। देख तो, उस आले में शायद एक टुकड़ा रखा था।'

साबुन तलाशकर रामू चद्दर धोने लगा।

बोला—'माँ, जगदीश ने नौकरी छोड़ दी, मालूम है?'

'क्यों, उसे यह क्या सूझा?'

'बहुत ठीक किया। चाय की दुकान की नौकरी—तुम नहीं जानती कि कैसी मेहनत करनी पड़ती है! साले को आराम हो गया।'

'लेकिन खायगा क्या?'

साबुन के फेनों से भरे हाथों को आगे बढ़ाकर रामू ने उत्तर दिया—'खायगा क्या? उसने तीन नौकर रखे हैं। जानती हो, विवेकानन्द

रोड पर दुकान खोली है। और मुझसे कहता है—तुम भी इसमें शामिल हो जाओ।'

जरा रुककर फिर बोला, 'कल साले की दुकान में गया था। खूब चल रही है, माँ। सुना? कहता था, सब खर्च बाद देकर भी दो रुपये रोज़ बच जाते हैं। मुझसे फिर पूछा, शामिल होओगे? आधा-आधा हिस्सा कर लेंगे। लेकिन रुपये कहाँ से आयें?'

रधिया चुप रहती है।

रामू विनीत भाव से कहता है, 'माँ दो न, पचास रुपये।'

'मेरे पास रुपये कहाँ हैं?'

'तुम्हारे पास रुपये हैं। और ऐसे कौन से ज्यादा रुपयों का सवाल है? दे दो न। हर महीने दस रुपयों के हिसाब से मैं चुका दूंगा। बिलकुल सच कहता हूँ।'

'मुझे दिक न करो। मेरे पास तो जैसे रुपयों का पेड़ लगा हुआ है न?'

कुछ रुपये रधिया के पास हैं। चार-पाँच सौ से ज्यादा नहीं। चना-चिऊड़ा बेचकर और खाने-पहनने में कुताई करके रधिया तो क्या, और कोई दूसरा भी इससे ज्यादा नहीं बचा सकता।

मनुष्य के जीवन में रोग-शोक और दुख-सुख लगे ही रहते हैं। यदि दो दिन के लिए ही रधिया बीमार पड़ जाय, तो दुकान तो बन्द रहेगी ही, साथ में दवा-दारू का खर्च भी बढ़ेगा। उम्र भी चालीस हो गयी है। और कुछ दिनों बाद मेहनत करने की इतनी भी शक्ति शायद उसके शरीर में न रहे। ऐसे वक्त-बेवक्त के लिए उसे दो रोटियों का इन्तज़ाम तो करना ही होगा। इसलिए वह इस रुपये को किसी को भी नहीं दे सकती। बहुत ही चतुराई से उसने रुपये छिपाकर रख रखे हैं। उस गुप्त जगह को कोई नहीं जानता। रुपयों का पता लगा लेना रामू की ताक़त के बाहर की बात है।

रामू ने बहुत कोशिश की।

पहले आरजू-मिन्नत, फिर रोना-धोना, रूठना और अन्त में आत्म-हत्या कर लेने की धुड़की।

लेकिन रधिया ज़रा भी टस-से-मस नहीं हुई।

'उसके पास रुपये कहाँ हैं? उसे रुपये कौन देगा? वह क्या लाट साहब के दफ्तर में नौकरी करती है? या, रामू ने लाकर उसे हजार-पाँच सौ दिये हैं? यह जरा-सी चना-चिऊड़ा की दुकान है। फिर दुकान और कमरे का किराया है, दो-दो व्यक्तियों के खाने-पीने का खर्च है, तन ढँकने के लिए कपड़े भी चाहिए। इतने सब खर्च के बाद उसके पास बचता ही क्या है? रामू ऐसा नासमझ क्यों बन जाता है? यदि उसके पास चार-पाँच सौ रुपये भी होते (रामू ऐसी खुशामद कर रहा है!) तो वह वहीं दे देती।'

लेकिन रामू तो एकदम नासमझ बन गया है।

दो दिन, चार दिन, दस दिन—माँगते-माँगते वह थक गया।

अन्त में एक दिन शराब के नशे में चूर शाम के वक्त हाथ में छुरा लिये वह एकाएक हाज़िर हुआ—'रुपया देना है तो दे दे, नहीं तो मैं मार डालूंगा।'

एक जबरदस्त हो-हल्ला मचा।

रधिया की चीख-चिल्लाहट सुनकर मुहल्ले के लोग इकट्ठे हो गये। उन्होंने रामू के हाथ से छुरा छीन लिया। रोते-झींकते रामू चला गया।

जाते-जाते धमकी दे गया—'तुम्हें देख लूंगा। रात को तेरा गला दबा दूंगा, मार डालूंगा। देखूं, तब तुझे बचाने कौन आता है?'

इन धमकियों से राधा डरनेवाली नहीं है। इस कलकत्ता शहर में उसके जीवन का काफ़ी भाग कटा है। सैकड़ों मनुष्यों के संसर्ग में आकर, हजारों आफ़तें और कष्टों को झेलने के बाद वह इस मुहल्ले में आयी है। कभी भी कोई उसका सहायक नहीं था। सदा से वह एकाकी है। मन

में भरोसा और हृदय में साहस रखकर ही वह इतनी कठिन परीक्षाओं म उत्तीर्ण हुई है।

फिर भी उसे डर लगा।

असंख्य अपरिचितों के बीच उसके दिन कटे हैं। रामू उसका अपना बेटा है। उसने ही उसे पाल-पोसकर इतना बड़ा किया है। फिर भी रधिया को उससे ही डर लगा, न जाने क्यों ?

उसकी आँखें लाल हो रही थीं, जैसे उनमें खून उतर आया हो। पैर काँप रहे थे और आवाज़ अटक रही थी। लेकिन इससे वह नहीं डरी थी। उसने अनेक शराबी देखे हैं। शराबियों के सम्बन्ध में उसे काफ़ी ज्यादा अनुभव है। शराबी से वह नहीं डरती।

लेकिन रुपये के लोभ में जब लड़का ही अपनी माँ की छाती में छुरा भोंकने के लिए तैयार हो जाता है, तब उसकी आँखों के सामने लोभ का हिंस्रतर रूप शायद छुरे की तरह ही चमचमा उठता है। इस कलकत्ता शहर में तो हथेली पर जान लिये मनुष्य घूमता है। किसी भी समय मनुष्य की मृत्यु हो सकती है। पद-पद पर चोर, गुण्डे और लफंगों से मुकाबला हो सकता है। इन सब बातों से वह नहीं डरती। लेकिन जब अपने ही पेट का बेटा शराब के नशे में सुध-बुध खोकर अपनी माँ की हत्या करने आता है, तब डर लगता ही है।

रधिया को भी डर लगा।

उस दिन से जो रामू गया, तो फिर लौटकर नहीं आया।

अगर आता और स्वस्थ अवस्था में यदि रधिया से मिलता, तो शायद फायदा ही होता। उसका डर कम हो जाता। लेकिन वह तो फिर लौटकर ही नहीं आया। इससे उसका भय और बढ़ गया।

रामू नहीं आया। क्या पता, वह कहाँ है और कौन-सी नयी चाल-बाजियाँ सोच रहा है। ताला बन्द कमरे का किवाड़ खोलकर भीतर

घुसने में भी डर लगता है। लगता है, जैसे रामू कमरे के किसी कोने में छिपा हुआ बैठा है। अन्दर से दरवाज़ा बन्द कर वह सोती है। बाहर जरा-सी भी आहट होते ही उसका हृदय काँप उठता है।

जीवन के हर क्षेत्र में निर्विघ्न घूम-फिर आने के बाद इस बुढ़ापे में क्या बेटे के हाथों मरना ही तकदीर में लिखा था?

उसे हर वक्त यही डर लगा रहता।

जब उसके मन की ऐसी हालत थी, तब अप्रत्याशित रूप से देवकुमार से मुलाकात हो गयी।

देवकुमार एक अच्छे ब्राह्मण घराने का था। पढ़ा-लिखा कुछ भी न था, लेकिन देखने में बिलकुल राजकुमार जैसा लगता था। पहले नाटक मण्डलियों में राजा का पार्ट किया करता था। रधिया उस पर भरोसा करके ही एक दिन इस कलकत्ता शहर में आयी थी। दोनों ने एक नया संसार बसाया था। इसके बाद एक दिन दोनों में झगड़ा हो गया और फिर सदा के लिए वे अलग हो गये।

उसके पश्चात् दोनों की फिर मुलाकात नहीं हुई।

क्या मालूम इस रास्ते से देवकुमार कहाँ जा रहा था। गरम-गरम चने देखकर वह खरीदने के लिए आगे बढ़ा। एकाएक रधिया का चेहरा देखकर वह चौंक उठा—

'रधिया है न?'

अपने विचारों में मस्त रधिया चने भूंज रही थी। इस मुहल्ले में उसका नाम कोई नहीं जानता। नाम लेकर कोई पुकारता भी नहीं है। काफी अरसे के बाद अपना विस्मृतप्राय नाम सुनकर वह चौंक उठी!

चौंककर उसने जो मुंह ऊपर उठाया, तो उसकी आँखों को विश्वास नहीं हुआ।

देवकुमार!

देवकुमार अब उतना सुन्दर नहीं है। कपड़े भी वह बहुत मैले पहने हुए था। हाथ में एक टूटा हुआ छाता और पैरों में फटे हुए जूते थे। सिर के बाल भी प्रायः सफ़ेद हो गये हैं और शरीर का रंग भी बहुत ढक गया है। चेहरे पर चेचक के दाग भी हैं। उसकी वे दोनों बड़ी-बड़ी आँखें—जिन्होंने एक दिन रधिया को घर छोड़ने के लिए बाध्य किया था—उनमें से एक तो बिलकुल खराब हो चुकी है शायद चेचक से और दूसरी भीतर धँस गयी है।

रधिया एक छोटी-सी धोती पहने हुए थी। सिर ढाँकने की गरज से उसी धोती को खींचते हुए रधिया ने पूछा—'तुम यहाँ कैसे?'

'इधर जा रहा था। भूख लग रही थी। चने की दुकान देखकर सोचा, दो पैसे के चने ही ले लूँगा। एकाएक तुम पर नज़र पड़ते ही आश्चर्य में पड़ गया।'

'आश्चर्य में पड़ने की बात ही है। आओ, भीतर आओ।'

उस दिन रधिया की दुकान उसी वक्त बन्द हो गयी।

देवकुमार को कमरे में बैठाकर उसने बहुत उत्साहपूर्वक उसे जलपान कराया। चारों ओर देखकर देवकुमार ने पूछा—'इस मकान में तुम अकेली ही रहती हो?'

'हाँ, अब अकेली ही हूँ।'

रधिया हँसी!

देवकुमार का जलपान खत्म हुआ। रधिया ने बीड़ी दी, पान खिलाया।

देवकुमार ने हँसते हुए कहा—'तुम्हारी खातिरदारी देखकर तो यहाँ से जाने की इच्छा ही नहीं होती।'

'तो क्या हर्ज है। यहीं रहो न?'

'तुम्हारा लड़का कहाँ है?'

'मर गया।'

'कैसे ?'

रधिया ने सब किस्सा सुनाया। हँसते हुए अन्त में बोली—'है तो आखिरकार तुम्हारा ही लड़का न ! तुम्हारी जैसी ही उसकी सब आदतें हैं।' गम्भीर स्वर में बोली—'यहाँ अकेले रहते हुए डर लगता है। कुछ दिन यहीं रह जाओ न ?'

'कुछ दिन की तो नहीं कह सकता। लेकिन यह बताओ, आज रात को ठहरने दोगी ?'

'जरूर-जरूर। कहा न, अपना ही घर समझो।

'क्या खिलाओगी ?'

'जो कहोगे वही। लेकिन सौदा लाने के लिए तुम्हें ही बाजार जाना होगा।'

देवकुमार ने कमीज़ उतार दी और हाथ में पंखा लेकर आराम से बैठ गया।

देवकुमार खुद सौदा लाने बाजार गया।

उस दिन बिछौने के चादर में साबुन लगाने के बाद साबुन का जो जरा-सा टुकड़ा बच गया था, उसे रधिया ने सँभालकर आले में रख दिया। देवकुमार के बाहर जाते ही रधिया ने उस टुकड़े को निकाला और मुँह-हाथ धोया। चोटी गूँथी और एक साफ़-सुथरी धोती निकालकर पहनी। बिस्तरे पर धुली हुई चादर बिछायी। फिर पान लगाने लगी। देवकुमार पान बहुत खाता है। बहुत दिनों बाद आज रधिया ने भी एक पान खाया।

इस बीच देवकुमार बाज़ार से लौट आया।

'घी है, मांस भी—अब और क्या बाकी बचा ?'

रधिया नाराज़ नहीं हुई। हँसते हुए बोली—'क्या-क्या उठा लाये ? सब रुपये खत्म कर आये न ?'

'नहीं ; सिर्फ दो पैसे बचे हैं, यह लो।'

'तुम हमेशा से ही पैसा उड़ानेवाले हो।'

'पैसा उड़ानेवाला सब चीज़ तो ले आया। लेकिन अभी कुछ पैसे और चाहिए।'

'वह किसलिये ?'

'वाह ! मांस आ गया और इसके साथवाली असली चीज़ बाकी रहेगी ? बस, सिर्फ एक बोतल !'

रधिया ने डरते-डरते कहा, 'नहीं, नहीं, इस मुहल्ले में...'

'दुत् पगली ! तुमने क्या मुझे नया पियक्कड़ समझा है ?'

देवकुमार किसी भी तरह न माना। उसे रुपये देने ही पड़े। बरसों बाद, रधिया के जीवन में फिर वही पुरानी उत्सवमयी रात्रि आयी।

इसके बाद का इतिहास संक्षिप्त है !

दूसरे दिन सुबह देखा गया कि वह साफ़-सुथरा सफ़ेद बिछौना एक ओर बिछा हुआ है। दूसरी ओर ज़मीन पर रधिया की मृत देह खून से लथपथ पड़ी हुई है।

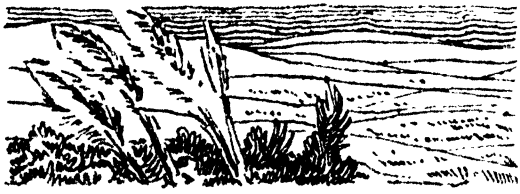

अपने हृष्ट-पुष्ट शरीर को जरा आगे की ओर झुकाते हुए रामानन्द पूजा करने बैठा।

अभी-अभी सवेरा हुआ है। कड़ाके की सर्दी है। लेकिन रामानन्द सिर्फ एक पतला-सा रामनामी दुपट्टा ओढ़े हुए है।

बगलवाले कमरे में दो बच्चों ने एक साथ रोना-चीखना शुरू कर दिया था। पर दुर्गा के थप्पड़ों ने उन्हें शीघ्र ही चुप कर दिया। उसके सात बच्चे हैं। प्यार की बातें करना तो दुर्गा न जाने कब की भूल चुकी है। अब तो सारा दिन डाँट-डपट और कोसने में ही बीतता है।

रामानन्द के कानों में कोई आवाज नहीं पहुँचती। आध्यात्मिकता के एक शिखर से दूसरे पर वह पहुँच जाता है। उसके सामने किसी देवी-देवता की मूर्त्ति नहीं होती और न वह किसी मंत्र का पाठ ही करता है। सिर्फ आँखें बन्द किये बैठा रहता है, किसी दिन एक घण्टा और कभी इससे भी ज्यादा। उस समय ऐसा लगता है, जैसे सिवा दिल की धड़कन के उसके शरीर की समस्त इन्द्रियाँ निष्क्रिय हो गयी हों; उस वक्त मानो इस संसार से उसका कोई सम्बन्ध नहीं रहता, कुछ लेना-देना नहीं।

सात लड़के-लड़कियों में संतोष सबसे बड़ी है। सोलहवाँ साल चल रहा है। पढ़ने-लिखने में बहुत तेज है। लेकिन मैट्रिक के इम्तिहान के ठीक दो महीने पहले ही रामानन्द ने उसका स्कूल छुड़ा दिया था। दुर्गा ने बहुत कुछ कहा, 'आजकल किसकी लड़की नहीं पढ़ रही है, बताओ? सब लोग पढ़ी-लिखी लड़कियाँ ही चाहते हैं। और नहीं तो शादी के ख्याल से भी उसे मैट्रिक करा देना बहुत जरूरी है।'

'लड़कियों को बहुत ज्यादा पढ़ाने से क्या फायदा?'—मधुर किन्तु गंभीर स्वर में रामानन्द ने उत्तर दिया—'डिग्रियाँ उनके किस काम आती हैं? घर-गृहस्थी चलाने के लिए इतनी शिक्षा बहुत काफी है। और फिर, शादी की सबसे बड़ी उपयोगिता है माँ बनना, संतान-धारण एवं उसके पालन-पोषण करने की क्षमता ही सबसे बड़ा गुण है।'

उसकी बात के आगे किसी की नहीं चलती। इस गृहस्थी में रामानन्द की राय ही अंतिम है, दुर्गा यह अच्छी तरह जानती है। आरजू-मिन्नत, बहस, क्रोध और मान-अभिमान सब व्यर्थ हैं। अन्त में

पति की हाँ में हाँ मिलानी होगी, उनकी बात माननी पड़ेगी, युक्तियाँ स्वीकार करनी होंगी। इस कारण दुर्गा ने आगे कुछ कहना उचित न समझा।

रामानन्द के दफ्तर चले जाने पर संतोष सारे दिन रोती रही। पर शाम को पिता के आ जाने पर आँसू बहाकर अपने दिल का बोझ भी हल्का नहीं कर सकती थी ; क्योंकि बिना आँखें घुमाये ही रामानन्द सब कुछ देख लेता है, दूर रहते हुए भी सब कुछ सुन लेता है। इसलिए संतोष की रोने की हिम्मत नहीं हुई।

लेकिन पिता ने जो कुछ किया है, उसके भले के लिए ही किया है—यह विश्वास संतोष को है ; क्योंकि उसके पिता कभी भी अन्याय या कोई गलती नहीं करते। बचपन से ही यह ख्याल उसके दिल में अच्छी तरह बैठा दिया गया है। पिता जो कुछ कहते हैं, वह सुनना होगा, उनकी हर आज्ञा का पालन करना होगा।

संतोष के बाद तीन लड़के—उमाशंकर, शिवशंकर और रमाशंकर। इनके बाद तीन का नाम है—विमला, कमला और सरला। सरला अभी डेढ़ साल की है। कमला अभी स्कूल जाने लायक नहीं है। बाकी और सब स्कूल में पढ़ते हैं।

पन्द्रह साल की उम्र में ही उमाशंकर बहुत धार्मिक और गम्भीर है। आठवीं क्लास का छात्र है। किताब खोलने से पहले मन-ही-मन वह बीस श्लोकों का पाठ कर लेता है। राह चलते जितने भी देवी-देवताओं की मूर्त्तियाँ नज़र आती हैं, उन सबको भक्ति-भाव से प्रणाम करता है। अब तक उसने सिर्फ दो बार ही सिनेमा देखा है। उसमें भी पहली बार तो सिर में बेहद दर्द हो गया और दूसरी बार फिल्म देखते-देखते हाउस में ही कै कर दी। घर के सैकड़ों छोटे-मोटे कामों का भार उसपर है, जैसे बाजार से सौदा लाना, दोनों छोटे भाइयों को पढ़ाना, किसी के बीमार पड़ने पर होमियोपैथिक डाक्टर के यहाँ से हाल कहकर दवा लाना,

बुखार नोट करना इत्यादि। उसकी जितनी जिम्मेदारी बढ़ती जाती है, मानो उसे उतना ही अधिक संतोष मिलता है।

विमला और कमला को पढ़ाने का जिम्मा संतोष पर है। गृहस्थी के और भी अनेक काम उसे करने पड़ते हैं, जैसे महरी के न आने पर बर्त्तन माँजना, झाड़ू-बुहारू देना इत्यादि। अभी फिलहाल तो उस गृहस्थी का सारा भार उसपर ही है, क्योंकि दुर्गा के शीघ्र ही संतान होनेवाली है। अब ज्यादा देर नहीं है। फिर भी दोनों वक्त रसोई दुर्गा को ही बनानी पड़ती है। कारण, रामानन्द को उसी के हाथ का खाना पसन्द है। हालाँकि उसने अपनी जबान से कभी कुछ नहीं कहा, कोई शिकायत नहीं की। लेकिन भोजन अच्छा न बनने पर वह ऐसा भाव दिखाता है, जो भाषा से भी ज्यादा प्रखर और स्पष्ट होता है।

'उफ़, अब मुझसे नहीं होता। धुएँ में तो जैसे दम ही घुट जायगा।' दुर्गा ने एक दिन कहा था।

'यह धुएँ का दोष नहीं है।' रामानन्द ने उत्तर दिया था—'यह तुम्हारे फेफड़ों की कमजोरी है। तुम्हारे शरीर में सिर्फ पेट ही बढ़ता जाता है, इसके साथ-साथ ताकत बढ़ाने की तरफ ध्यान दो।'

दुर्गा की जबान पर बहुत कड़ा उत्तर आया था, पर वह फौरन ही सँभल गयी। वह कुछ कहना चाहती थी, पर कह न सकी। शायद सुनने में वह उत्तर बहुत खराब लगता। और वह सोचती है कि पुरुष से वैसी बात कहने का अधिकार भी शायद उसे नहीं है।

खाना बनाने का भार भी अन्त में संतोष को लेना पड़ा। कमला और सरला की देख-भाल करना ही दुर्गा के लिए काफ़ी है। सरला अब भी माँ का दूध पीती है और कमला तो माँ के बिना एक मिनट भी नहीं रह सकती।

रामानन्द की पूजा खत्म हुई। उसके चेहरे पर शान्ति के भाव थे। आसन से उठकर उसने कमीज पहनी और फिर वह खाट पर लेट गया। दस मिनट बाद ही उसका नाश्ता आया। दो उबले हुए अण्डे, दो टोस्ट और मलाई पड़ा हुआ एक कटोरा दूध।

दस बजे वह खाना खाता है, सवा दस से दस पच्चीस तक आराम; न पान खाता है और न धूम्रपान ही करता है। चूड़ीदार पायजामा, कमीज, अचकन और छड़ी की जगह छाता—यही उसकी पोशाक है। भटनागर एण्ड श्रीवास्तव कम्पनी का सीनियर पार्टनर, ठीक दस बजकर पैंतीस मिनट पर घर से चल देता है। यह लम्बा-चौड़ा और तगड़ा व्यक्ति जब आत्म-विश्वास के एक खास ढंग से सड़क पर चलता है, तब ऐसा लगता है, जैसे इस सड़क का मालिक वही हो। अभी उसका उनचासवाँ साल चल रहा है।

रामानन्द ने दूध का कटोरा मुँह से लगाया ही था कि दुर्गा ने कमरे में प्रवेश किया।

हँसते हुए बोला—'क्यों, क्या बात है? कोई नयी डिजाइन की साड़ी चाहिए? या कान के टाप्स? तुम झुमके क्यों नहीं पहनतीं? तुम्हारे कानों में खूब खिलते हैं।...और तुम्हें बाल काढ़ना आज तक नहीं आया? कैसी माँग निकालती हो, जरा शीशे में एक बार देखो तो सही। और देखो, यह कैसी कमीज पहन रखी है, अब इसका युग नहीं है। ज़माना बदल रहा है, पर तुम नहीं बदलीं। देखो, स्त्रियों का कर्त्तव्य यह है कि पुरुष को आकर्षित कर प्रकृति के नियम को चालू रखें। लेकिन बात क्या है? तुम जब चिन्तित-सी दिखायी देती हो, तो मैं घबरा जाता हूँ। और मेरी घबराहट का कितना मूल्य है, यह मतु जानती हो?'

'जानती हूँ।...पर अब एक आदमी रखना जरूरी है।' दुर्गा ने कहा—'मुझसे तो अब काम-काज होता नहीं। अकेली संतोष बिचारी

काम करते-करते आधी हो गयी ! बच्चा ही तो है ! मेरे रहते ही अगर कोई आदमी रख लिया जाय, तो उसे सब काम-काज बता सकती हूँ।'

'तो रख लो न। है कोई नज़र में ? किसी ऐसे रसोइये को रखना, जो अच्छा खाना बनाना जानता हो।'

'मैं सोचती हूँ, नौकर या रसोइये से अच्छा होगा कि अपनी ममेरी बहन गोमती को ही बुला लूँ ? वह बेचारी पागल-जैसी है—बिलकुल बुद्धू। बुद्धू न होती, तो अब तक कब की शादी हो गयी होती। और सुनो, तुम्हारी तो इतनी जान-पहचान है, अगर यहीं कहीं किसी अच्छी जगह उसकी शादी करा दो, तो बड़ा पुण्य होगा। जरा कोशिश करो न।'

'अच्छा, देखूंगा,' रामानन्द ने कहा—'पर वह भी तो अभी लड़की ही है। उससे क्या काम चलेगा ?'

'ऐसी छोटी बच्ची नहीं है। उन्नीसवाँ खत्म होकर अभी बीसवाँ लगा है। बुद्धू जरूर है, पर है बहुत नेक। अगर अच्छा खाने-पीने को मिले, तो चार दिन में ही सूरत बदल जायगी।'

दूसरे ही दिन रामनगर जो पत्र भेजा गया, उसमें लिखा था कि किसी के साथ गोमती को भेज दिया जाय।

दुर्गा खुश थी। उसके मामा की इतनी भी तो आमदनी नहीं है कि घर-गृहस्थी का खर्चा चला सकें। फिर, लड़कियों की शादी करना तो दूर की बात है।

और कई दिन बाद एक रोज संध्या समय गोमती आ पहुँची, महेश के साथ। साथ में कपड़ों की एक पोटली थी और एक फटी हुई धोती में बिछौना लिपटा हुआ था।

महेश को दुर्गा के नाना नदी के किनारे से उठा कर लाये थे। वह वहाँ पड़ा हुआ था। उसे लिये-लिये सारे गाँव में घूमे, बहुत पूछ-ताछ और खोज की, पर उसका कोई परिचय नहीं मिला। उन्होंने उसे गाँव की पाठशाला में भर्त्ती करा दिया था, जहाँ उसे बहुत मामूली शिक्षा

मिली। अब भी मामा के यहाँ कोई भी काम पड़ने पर उसकी ही पुकार होती है।

दूसरी मंजिल पर बरामदे के अन्त में बिना दरवाजे की एक गन्दी कोठरी थी। उसी में एक छोटी खटिया डाल दी गयी। गोमती इसी में रहेगी और महेश नीचे के बैठकखाने में सो जायेगा। वह तो कल-परसों चला ही जायगा, इस कारण उसके लिए कोई चिन्ता नहीं। हाँ, गोमती के लिए दुर्गा को कुछ सोचना पड़ा, पर क्षण-भर के लिए ही। गोमती के व्यक्तिगत स्वातंत्र्य के बारे में वह बिलकुल भूल गयी।

घर का सारा काम-काज समझने-बुझने में गोमती को कई दिन लगे। वह सिर्फ यह सुन लेती है कि उसे क्या करना होगा, फिर कोई अदल-बदल नहीं होता ; कोई परिवर्तन नहीं। बिलकुल मशीन की तरह चुपचाप वह सारा काम-काज करती जाती है। आवेगहीन, बुद्धिहीन, एक पुतली की तरह दोनों वक्त खाना बनाती है, दाल-चावल फटकती है, कपड़े धोती है, झाड़ू-बुहारू लगाती है, छोटे से लेकर बड़े तक सब लोगों का हुक्म बजाती है।

जैसे फटे-पुराने कपड़े पहनकर वह आयी थी, वैसे कपड़े यहाँ कोई नहीं पहनता। संतोष ने उसे अपनी एक धोती और ब्लाउज़ पहनने को दे दिया है। नये कपड़ों में वह जँच गयी है, चेहरे पर भी कुछ रौनक आ गयी है। तो भी गोमती की आँखों में जैसे कोई भाषा नहीं है, कोई भाव नहीं है, किसी भी प्रकार की कोई कामना, द्वेष, राग या विरक्ति नहीं है।

गोमती को यहाँ पहुँचाकर महेश अब तक क्यों नहीं वापस चला गया, यह कोई नहीं जानता। किसी ने भी यहाँ ठहरने के लिए उससे नहीं कहा, किसी ने दिखावे के लिए भी अनुरोध नहीं किया। फिर भी वह टिका हुआ है, जाने का नाम नहीं लेता। ऐसा लगता है, जैसे किसी अजान, अनाहूत एवं उपेक्षित वस्तु को पानी का बहाव यहाँ फेंक गया हो।

'अच्छा, अब मुझे चला जाना चाहिए,' एक दिन उसने रामानन्द से कहा। उसके निरीह और शान्त चेहरे पर हमेशा ही हँसी की एक हल्की-सी रेखा रहती है।

'जाओगे।' रामानन्द ने सिर्फ इतना ही कहा; प्रश्न नहीं, निर्देश भी नहीं और न कोई उत्सुकता ही!

ठीक-ठीक राय जानने के इन्तजार में महेश खड़ा रहा। रामानन्द ने बिजली कम्पनी का बिल उसकी ओर बढ़ाते हुए कह दिया—'जरा धूप कम हो जाय, तो इसका रुपया जमा कर आना। आज जमा कराने की आखिरी तारीख है। समझे।'

महेश वहाँ से चल दिया।

कई दिन बाद रामानन्द ने एक रोज एकाएक पूछा—'गाँव में तुम क्या करते थे?'

'कुछ नहीं। पहले जब मामाजी की दुकान थी, तब उनके साथ ही काम करता था। और अब तो काम-काज था नहीं, ठाला बैठा दिन काटता था।'

'तुम्हारी अभी उम्र ही क्या है, तुम्हारे सामने सारा भविष्य खड़ा है।' कहकर रामानन्द चुप हो गया।

महेश ने उसकी ओर देखा, किन्तु रामानन्द के चेहरे पर कोई परिवर्तन नजर नहीं आया।

'हर इन्सान को अपने पैरों पर खड़ा होना चाहिए।' रामानन्द ने फिर कहा—'स्वावलम्बन ही सुख की कुंजी है। कोशिश करो न, यदि तुम्हें यहाँ कोई नौकरी मिल जाय।'

महेश की आँखों में उत्तेजना की ऐसी चमक दिखाई दी कि जवाब देने में उसकी आवाज काँप गयी—'इतने बड़े शहर में मैं कहाँ जाऊँ और क्या करूँ? सिवाय आपके मैं यहाँ किसी को जानता-पहचानता तक नहीं। आप ही मेरे लिए कोई छोटा-मोटा काम खोज दीजिए न?'

'मैं ?' रामानन्द ने सिर्फ इतना ही कहा—'जरा देखो तो रसोई बनने में कितनी देर है, दफ्तर जाने का वक्त हो गया।'

रसोई की खबर लेने महेश चल दिया और रामानन्द बिना उसका इन्तजार किये ही ऊपर चला गया।

खाते वक्त रामानन्द ने दुर्गा से कहा—'कुछ सुना ? तुम्हारा महेश नौकरी करना चाहता है। यहाँ आकर तो जैसे उसकी आँखें ही खुल गयीं।'

'वह बहुत समझदार और होशियार है।' उत्साहित हो दुर्गा ने उत्तर दिया—'कहीं उसकी नौकरी लगवा दो न। देखना, कितनी लगन से काम करेगा। बड़ा अच्छा होगा कि.....।'

'वह क्या नौकरी करेगा!' रामानन्द ने हड्डी चूसते हुए कहा—'एकदम मूर्ख है।'

'मूर्ख लोग क्या काम नहीं करते ? कोई लिखने-पढ़ने का काम थोड़े ही करेगा। कोई ऐसा-वैसा काम दिला दो, जिससे उसकी गुजर हो जाय। फिर, कब किसका भाग्य चमक उठे, यह कौन जानता है ? कहने को तो हो जायगा कि हमने उसे शरण दी, तो वह आदमी बन गया।'

रामानन्द ने कोई जवाब नहीं दिया। सिर्फ स्वाद लेते हुए हड्डी चूसता रहा।

उसी दिन रात के वक्त रामानन्द ने महेश को बुलाया।

महेश जैसे ही आकर खड़ा हुआ कि उसकी तरफ एक लिफाफा फेंकते हुए रामानन्द ने कहा—'नौकरी की चिट्ठी है, अँगरेजी में लिखी हुई है। अभी साठ रुपया महीना मिलेगा। अगर तुमने अच्छा काम किया, तो तीन महीने बाद तरक्की होगी। तब सत्तर रुपया माहवार मिलेगा।'

लिफाफा उठाने के लिए महेश ऐसे झुका, जैसे कोई बहुत पवित्र वस्तु जमीन पर गिरी पड़ी हो।

'कम्पनी का नाम गिरधारीलाल एण्ड सन्स है। बाईस नम्बर हार्नबी रोड में दफ्तर है। हम ही उनके सप्लायर्स हैं। पहली तारीख

से काम पर हाजिर होना होगा।' बिना उसकी तरफ देखे ही रामानन्द इतनी बातें एक साथ कह गया।

महेश ने आगे बढ़कर रामानन्द के पैर छुये। पर उसने अपने पैर कुछ इस ढंग से पीछे हटाये, जैसे किसी भयानक छूत की बीमारी का कीड़ा पाँवों को स्पर्श कर रहा हो।

उसी दिन आधी रात को दुर्गा को अस्पताल पहुँचाया गया।

घर का सारा काम गोमती और संतोष ने अपने जिम्मे ले लिया।

महेश के कामों का भी जैसे अन्त नहीं है। दिन-भर सारे मकान में वह इधर-से-उधर चक्कर लगाता रहा। हरएक के काम का भार उसने थोड़ा-बहुत हल्का किया। प्रत्येक बात में, अपने हर व्यवहार से वह जैसे कृतज्ञता स्वीकार कर रहा हो। रामानन्द उसका अन्नदाता है, अतः घर के पालतू कुत्ते के प्रति भी उसकी भक्ति और श्रद्धा है।

अब दो दिन बाद ही वह काम पर जाने लगेगा। संतोष ने नया पायजामा और कमीज खरीदने के लिए उसे रुपये दिये। महेश अपने कपड़ों के साथ-साथ गोमती के लिए भी एक छपी हुई धोती खरीद लाया।

नयी धोती पहने हुए गोमती रामानन्द के लिए भोजन की थाली लायी। संतोष भी पास ही खड़ी थी। फिर भी उसकी नजर बचाते हुए रामानन्द ने चकित भाव से गोमती की ओर एक बार गौर से देखा।

घर का सारा काम-काज खत्म कर रात को जब गोमती सोने जाती, तब काफी देर हो जाती। बरामदा पारकर अपनी कोठरी में पहुँचने के पहले ही उसकी आँखों में नींद भरी रहती।

उस दिन भी बरामदा पारकर गोमती अपनी कोठरी की ओर जा रही थी। सारे मकान में पूर्णतः शान्ति थी; सब लोग गहरी नींद में थे। ऐसा लगा, जैसे किसी ने उसकी धोती खींची। वह खड़ी हो

गयी। उसकी आँखों में न तो भय था और न विस्मय ही। वह सिर्फ ठहर गयी। कोई उसका हाथ पकड़कर कह रहा था—'जरा इधर आओ!'

उसने आदेश के स्वर का अनुभव किया और फौरन ही उसकी नींद गायब हो गयी। एक क्षण में ही उसने अपने आपको तैयार कर लिया, किसी नये कर्त्तव्य पालन के लिए। कोई काम करना होगा, सिर्फ काम और कोई अन्य अनुभूति उसे नहीं है।

कमरे में पहुँचकर भी रामानन्द ने गोमती का हाथ नहीं छोड़ा।

दरवाजा बन्द करने की धीमी आवाज गोमती ने सुनी।

कमरे में रोशनी गुल थी। सड़क पर लगे हुए लैंप की फीकी रोशनी खिड़की से कमरे में आ रही थी; उसी के धुंधले प्रकाश में गोमती ने रामानन्द को पहचाना। आज से पहले कभी इस कमरे में आने की जरूरत नहीं पड़ी थी।

'डर की कोई बात नहीं, आओ।'

गोमती ने शून्य दृष्टि से सिर्फ देखा, अपने आप से पूछा—कहाँ? शायद बिस्तरा ठीक से नहीं बिछाया गया है, अथवा सुराही से पानी देना होगा।

रामानन्द के स्पर्श में जोर नहीं, सिर्फ निर्देश है।

गोमती पलंग की तरफ बढ़ी।

स्लीपर उतार कर रामानन्द पलँग पर बैठ गया। बोला—'आओ, यहाँ बैठो।'

अपने पैर नीचे लटका कर गोमती बैठ गयी।

रामानन्द ने उसके कन्धे पर हाथ रखकर उसे अपने पास आने का इंगित किया।

पैर ऊपर उठाकर गोमती निकट बैठने ही वाली थी कि रामानन्द ने उसकी कमर में हाथ डालकर उसे प्रायः अपने ऊपर डाल लिया।

रामानन्द की चौड़ी छाती में गोमती का मुँह छिप गया। उसके दिमाग में विद्युत की लहरों की तरह सिर्फ एक ही बात घूम रही थी—क्या काम ? क्या काम ? क्या काम ? वह चुपचाप आदेश की प्रतीक्षा में थी।

'नींद आ रही है ?' रामानन्द ने पूछा।

गोमती ने सिर्फ सिर हिलाया। पर हाँ या ना—यह रामानन्द की समझ में नहीं आया।

'अभी थोड़ी देर में चली जाना।' गोमती के शरीर पर हाथ फेरते हुए रामानन्द ने कहा—'अरे, आज तो तुमने नया ब्लाउज पहना है ! जरा देखूं।'

उसका दुबला-पतला शरीर क्षण भर के लिए काँप उठा।

'क्या जाड़ा लग रहा है ?'

गोमती ने कोई जवाब नहीं दिया।

'खिड़की बन्द कर दूं ?'

कोई जवाब नहीं।

अपने दोनों कमजोर हाथों से उसने बाधा दी। बाधा दी शंका या भय के कारण नहीं और न उसने बाधा दी अपने को बचाने की कोशिश में ही। विशेष कोई उद्देश्य भी नहीं, बल्कि सिर्फ एक सहजात वृत्ति के वश।

रामानन्द ने उसके हाथ मोड़ दिये। असह्य यंत्रणा से वह प्रायः उठ बैठी थी। लेकिन शेर के पंजे की तरह उसके मुँह पर एक हाथ पड़ा और चेतना-शून्य-सा उसका सिर तकिये पर लोट गया।

क्षण-भर के लिए रामानन्द ने गौर किया—शुष्क और बिलकुल निर्विकार, पत्थर जैसी आँखें बाहर से आनेवाली प्रकाश की रेखाओं पर जमी हुई हैं।

फिर, पत्थर जैसी उन आँखों पर एक विशाल काली छाया जा पड़ी। और उस काली छाया ने गोमती को ग्रस लिया।

दूसरे दिन उसे सुबह उठने में जरा देर हो गयी। लेकिन तो भी गोमती सारे दिन खूब तेजी से काम करती रही। कहीं भी कोई फर्क नहीं हुआ। हाँ, सिर्फ उसकी दृष्टि और भी अधिक शून्य और भी ज्यादा निर्विकार थी।

काम खत्मकर रात को ऊपर जाने में कुछ देर हुई। बरामदे के आखिर में पहुँचकर क्षण-भर के लिए वह स्तब्ध भाव से खड़ी रही; आगे बढ़ गयी।

रामानन्द ने पुकारा—'आओ।'

कल उसके मन में एक प्रश्न था, युक्ति और जिम्मेदारी भी शायद थी। पर आज कोई प्रश्न नहीं। रामानन्द के कमरे में वह घुसी और रामानन्द ने तुरन्त दरवाजा बन्द कर लिया।

दुर्गा अस्पताल में इक्कीस दिन रही, इस बीच कोई व्यतिक्रम नही हुआ।

जिस दिन अस्पताल से दुर्गा घर आनेवाली थी, उस दिन दरवाज़े पर खड़े होकर रामानन्द ने कहा—'खबरदार। अगर किसी को भी कानोंकान खबर हुई तो...' और गोमती के गले पर हाथ रख दिया—'अगर किसी से भी कुछ कहा-सुना, तो यह फल मिलेगा...' और रामानन्द ने उसके गले पर अपनी अंगुलियाँ दबा दीं। वह प्रायः बेहोश ही होनेवाली थी कि रामानन्द उसे पकड़कर झकझोरते हुए कहा—'समझ गयी न?'

झकझोरने की वजह से उसका सारा शरीर जैसे काँप गया; पर फिर भी वह उत्तर न दे सकी। भाषाहीन आँखों और अपलक दृष्टि से अन्धकार की ओर देखती रही। रामानन्द ने उसे छोड़ दिया।

संतान-सहित दुर्गा अपने घर आयी। लड़के को देखकर रामानन्द ने कहा, 'इसका नाम जितेन्द्र शंकर रखूंगा।'

दुर्गा हँसी, उसके शरीर में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ।

गोमती का काम बढ़ गया। नवजात शिशु की देखभाल का सारा भार उस पर ही पड़ा। दुर्गा ने उसे सब सिखा दिया। सारा काम वह बहुत पटुता के साथ करती, लेकिन किसी ने भी उसे लाड़-प्यार की बात करते कभी नहीं देखा। बच्चे को सुलाते वक्त वह अपना घुटना हिलाती या कंधे से लगाये-लगाये टहलती, लेकिन कोई लोरी या गीत गुनगुनाते हुए उसे कभी किसी ने नहीं सुना। और भी अगर कोई गौर करता, तो देखता कि शिशु के हँसने या रोने से उसमें कोई भावान्तर नहीं होता। बच्चे की हँसी से उसके अन्दर कोई उत्साह या अनुराग होता है, यह पता नहीं चलता। रोने पर वह कुछ चिढ़ जरूर जाती है, पर वह भी क्षण भर के लिए ही। शिशु के रोने के कारण का पता लगाती है, उसे चुप कराने की कोशिश करती है। लेकिन उसके इन सब कामों में कहीं भी बिन्दुमात्र की व्यस्तता या अधीरता अथवा आसक्ति नहीं।

एक दिन दुर्गा ने कहा—'गोमती, यहाँ आकर तो तेरा चेहरा निखर आया है। अब तेरे जीजा से कहती हूँ कि तेरी शादी का प्रबन्ध करें।'

गोमती ने कोई उत्तर नहीं दिया, चुप रही। वह किस ओर देख रही थी, यह भी पता नहीं चला।

'क्यों री, तू चुप है! कुछ कहती नहीं!' दुर्गा ने फिर कहा।

नहीं, कोई जवाब नहीं। बिना कुछ कहे-सुने, कोई भाव प्रदर्शित किये, आवेगहीन यह युवती गोमती ठीक घड़ी की तरह सिर्फ काम करती जाती है, एक के बाद दूसरा, दूसरे के बाद तीसरा; इसी तरह श्रान्ति-हीन। घड़ी में आवाज़ तो होती है, पर गोमती के हृदय में तो कोई शब्द ही नहीं है, स्नायुओं में कोई स्पंदन नहीं। वह तो जैसे इंद्रियातीत किसी काल्पनिक जगत में रहती है और उसकी दुनिया में इस संसार के हास्य-रुदन और कोलाहल की लहरें नहीं पहुँचतीं। मनुष्य की आशा-आकांक्षाएँ वहाँ किसी भी प्रकार का आलोड़न नहीं पैदा कर पातीं।

तीन दिन तक रामानन्द के बन्द दरवाजे की ओर देखती हुई वह अपनी कोठरी में चली गयी है और सो गयी है। चौथे दिन रामानन्द के झक-झोरने से आधी रात को उसकी नींद खुल गयी। उसकी कोठरी में घना अन्धकार था, कुछ नहीं सूझता था। लेकिन उससे कुछ कहने की जरूरत नहीं हुई या कोई इशारा नहीं करना पड़ा। रामानन्द का अनुसरण करती हुई वह उसके कमरे में चली आयी।

दरवाजा बन्दकर रामानन्द ने उसके कन्धे पर हाथ रख कुछ प्यार के स्वर में पूछा—'किसी से कुछ कहा तो नहीं?'

कोई उत्तर नहीं।

'कोई बात पूछने पर तुम चुप क्यों रहती हो?' कुछ खीझे हुए स्वर में रामानन्द ने प्रश्न किया—'किसी से कुछ कहा तो नहीं?'

'क्या?' गोमती ने पूछा।

रामानन्द ने उसका हाथ पकड़ा और फिर उसे वह पलँग पर ले गया।

आजकल हर रोज सुबह उठने में गोमती को देर हो जाती है। प्रायः संतोष ही आकर उसे जगाती है। चौंककर वह झटपट उठ बैठती है, अपनी धोती ठीककर सारे दिन काम करने के लिए वह क्षण-भर में तैयार हो जाती है।

महेश नौकरी कर रहा है। पहली तनख्वाह मिलते ही उसने सब लोगों को मिठाई खिलायी। हरएक को उसने कुछ-न-कुछ उपहार दिया। गोमती को भी उसने प्लास्टिक की चूड़ियाँ, चुटीला और सुगन्धित तेल की एक शीशी दी। आधी तनख्वाह तो उपहार और मिठाई खिलाने में ही खर्च हो गयी।

प्रायः दो महीने बाद दुर्गा ने रामानन्द के कमरे में आना शुरू किया। लेकिन आजकल रामानन्द प्रायः उसे चिढ़ा देता है। नाराज कर देता है और फिर अलसायी हुई आँखों से वह अपने कमरे में लौट आती है।

कुछ दिनों के बाद एक दिन सुबह अँधेरे में ही गोमती की नींद खुल गयी। उसके सारे शरीर में बड़ी बेचैनी थी। खड़ी होने लगी, तो आँखों के आगे अँधेरा छा गया, सिर चकरा गया। उसने कसकर दरवाजे का पल्ला पकड़ लिया, गिरते-गिरते बची। कुछ क्षण तक खड़ी रही।

गोमती किसी से भी नहीं बोलती ; हमेशा चुप रहती है।

गोमती अपने कमरे में बैठी रहती है।

पर दुर्गा की आँखों को वह धोखा न दे सकी। उसने गोमती को एकांत में बुलाकर कहा—'नीच, चांडालिन, अपने माथे पर तैंने कलंक का टीका लगाया ! तूने यह क्या किया ? चूल्लू-भर पानी में डूब मरने की बात है ! पापिन, अपने साथ हमें भी ले डूबेगी !'

गोमती एकदम चुपचाप खड़ी रही, जैसे ये बातें उसके कान में ही न पहुँची हों।

'चुप क्यों खड़ी है ?' दुर्गा चीख उठी। उसने गोमती के गाल पर तड़ाक से एक चाँटा मारा, पाँचों उँगलियाँ उभर आयीं।

'बता—वह कौन है ?' दुर्गा ने फिर पूछा।

गोमती ने सिर्फ देखा, अर्थहीन दृष्टि से। प्रश्न का उत्तर देना तो दूर रहा, मानो उसने दुर्गा की बात ही नहीं सुनी।

'कौन है ? जल्दी बता !' दुर्गा ने फिर दो-तीन थप्पड़ कसकर जमाये। थप्पड़ मारने में काँच की एक चूड़ी टूट गयी और उसके गाल से खून बहने लगा। पर गोमती के मुँह में जबान नहीं है। चोटी पकड़ कर दुर्गा ने उसका सिर दीवार से दे मारा, 'बोल—जल्दी बता उसका नाम, नहीं तो मैं आज तुझे जिन्दा नहीं छोड़ूँगी।'

गोमती ने कोई प्रतिरोध नहीं किया, अपने को बचाने की उसने कोशिश ही नहीं की, मानो लात, घूंसों और थप्पड़ों की मार से उसे कोई

कष्ट या किसी तरह की तकलीफ ही न हो रही हो। यंत्रणा की एक रेखा भी उसके चेहरे पर नजर नहीं आयी।

और भी तीन-चार लातें जमाकर दुर्गा एकदम थक गयी। उसकी साँस फूल गयी। जाते समय वह कहती गयी—'कलमुँही, बता देती हूँ तेरे मुँह से नाम कहलाये बिना नहीं छोड़ूँगी। गरम चिमटे से तेरा मँह दाग दूंगी, जिससे तू अपना यह काला मुँह किसी को न दिखा सके।'

जली-भुनी दुर्गा रामानन्द के पास पहुँची। बोली—'हमारी तो नाक कट गयी, कहीं भी मुँह दिखाने लायक नहीं रहे।'

तीक्ष्ण दृष्टि से उसकी ओर देखते हुए रामानन्द ने शान्त स्वर में पूछा—'क्या हुआ?'

अपना मुँह कान के पास ले जाकर फुसफुस करते हुए उसने सारा किस्सा रामानन्द को बता दिया।

रामानन्द हँसा। बोला—'क्या पागलों जैसी बात करती हो! दिमाग तो ठिकाने पर है?'

'मेरा दिमाग बिलकुल ठीक है!' दुर्गा ने गुस्से में भरकर कहा—'मैं भी आठ बच्चों की माँ हूँ। जानते हो, हकीम से नब्ज और दाई से पेट नहीं छिपा रहता।'

'तुम्हारा ख्याल गलत भी तो हो सकता है।' रामानन्द तब भी हँस रहा था।

'इसमें गलती क्या खाक होगी? यह ऐसी बात नहीं, जो छिपी रहे!'

'पर गोमती...गोमती, उसे तो मैं बहुत ही नेक समझता था!'

'किसी के चेहरे पर उसका चरित्र नहीं लिखा रहता, किसी के मन में क्या है, यह कोई नहीं जानता...अब कुछ उपाय करो।'

'मैं—मैं क्या उपाय करूँ? और फिर, इन सब बातों में दिमाग लड़ाने का वक्त भी मेरे पास कहाँ है? पर वह शैतान कौन है, कुछ पता चला?'

'उफ़ ! इतना मारा कि मैं थक गयी, लेकिन ऐसी पक्की है कि मुँह से एक शब्द तक नहीं निकला। अब मैं इसका दूसरा इलाज करूँगी—उसे भूखों मारूँगी।'

'पर इससे क्या फायदा होगा ? समस्या तो हल नहीं होगी, बल्कि चारों ओर बात फैलेगी। सुनो, ऐसा भाव दिखाओ, जैसे कुछ भी नहीं हुआ। अच्छा बर्ताव करो और असली अपराधी को पकड़ने की कोशिश करो।'

'लेकिन इससे क्या होगा ?'

'उससे गोमती की शादी कर देंगे। लेकिन वह है कौन ? हमारे घर में ऐसा कौन व्यक्ति है ?' रामानन्द ने बहुत गौर से दुर्गा की ओर देखा। ठीक उसी वक्त दोनों के मन में एक ही विचार उठा।

'चुप रहो, जबान न खोलो—सिर्फ नजर रखो। अपने आप पकड़ा जायेगा।'

दुर्गा चुप रही। अब गोमती पर उसने कड़ी नज़र रखना शुरू कर दिया। यहाँ तक कि रात को भी कई बार सोते से उठकर देख आती कि गोमती अपने बिछौने पर है या नहीं।

कई दिन तक बराबर मौका खोजने के बाद रामानन्द को एक दिन गोमती अकेली मिल ही गयी। आँखें निकालकर बड़ी गम्भीरता के साथ धमकाते हुए उसने कहा—'देखो, मेरी बात जरा ध्यान से सुनो। आज रात को जागती रहना, कहीं सो न जाना। जब सब लोग सो जायँ और चारों ओर सन्नाटा हो, तब चुपचाप नीचे उतरना। गली से घूमकर, पीछे के दरवाजे से महेश के कमरे में पहुँच जाना और वहाँ बिलकुल चुप खड़ी रहना। उसके बाद जो कुछ भी हो, उसमें तुम कुछ न कहना। अपनी जबान न खोलना। हम लोग जो कुछ भी कहें, चुपचाप सुन लेना। आज, आज ही रात को, जब सब सो रहे हों, महेश के

कमरे में जाना। सामने का दरवाजा बन्द होगा, इसलिए गली से जाना—पीछे का दरवाजा ; समझीं, जाओ।'

आधी रात को रामानन्द ने दुर्गा को जगाया। कहा, 'उठो, जल्दी उठो!'

'क्यों, क्या बात है? क्या हुआ?'

'जरा बाहर आओ, जल्दी।'

दुर्गा के उठ आने पर उसने खबर दी—सीढ़ी में किसी के पैरों की आहट सुनकर रामानन्द की नींद अचानक खुल गयी, बाहर आकर उसने देखा कि गोमती नीचे जा रही है।

दुर्गा दौड़ी, उसकी धोती का पल्ला जमीन में घिसटता जा रहा था।

निश्चिन्त हो रामानन्द ने बिछौने पर लेटकर आराम से आँखें मूंद लीं।

दुर्गा ने बन्द दरवाजे को बहुत जोर से खटखटाया।

आँखें मलते हुए महेश ने दरवाजा खोला। बिना कोई प्रश्न किये ही दुर्गा ने बिजली का स्विच दबाया। रोशनी होते ही दुर्गा और महेश दोनों ने एक ही साथ देखा कि कमरे के एक कोने में गोमती खड़ी हुई है।

बहुत नफरत से दुर्गा ने गोमती की ओर देखा, कुछ क्षण तक तो उसके मुंह से शब्द ही नहीं निकले। गोमती की ओर महेश बढ़ा—'क्या हुआ गोमती? अभी तक तुम सोयी नहीं? मेरे कमरे में कब आयीं? कोई स्वप्न देखा है?' दुर्गा की ओर मुखातिब हो बोला, 'कुछ मालूम है—इसे क्या हुआ?'

'ज्यादा बनो मत महेश, चुप रहो। इतनी रात में मैं शोर नहीं मचाना चाहती। गोमती, मेरे साथ चलो।'

दुर्गा के पीछे-पीछे गोमती भी कमरे से बाहर निकल आयी।

महेश को गहरी नींद आ रही थी, बिजली बुझाकर वह बिस्तरे पर लेट गया। सोचने लगा, बात क्या है? पर उसकी समझ में कुछ नहीं

आया। अन्त में उसने यही ख्याल किया कि गोमती ने शायद कोई भयंकर या डरावना स्वप्न देखा होगा, इसलिए वह यहाँ आयी थी।

दूसरे दिन सुबह ही रामानन्द के कमरे में उसकी पुकार हुई। रामानन्द अभी पूजा-पाठ खत्म करके उठा था। उसके चेहरे पर शान्ति और निश्चिन्तता का भाव था।

'आओ, महेश, इस कुर्सी पर ही बैठो।' बहुत स्नेह के स्वर में उसने कहा—'हाँ, तो यह बताओ कि तुम्हारा काम कैसा चल रहा है?'

महेश उत्तर देना भूल गया, कृतज्ञता के बोझ से वह दब गया।

'देखो, तुम अपनी नौकरी प्रायः पक्की ही समझो। तुम्हारे काम से वे लोग बहुत ही खुश हैं। अब महेश तुम्हें अपनी शादी कर लेनी चाहिए। मेरी निगाह में एक लड़की है, देखने-सुनने में भी अच्छी है। गरीब घर की है बेचारी, लेकिन घर-गृहस्थी के काम-काज में बहुत होशियार है। अपना घर बसाओ और एक नया जीवन शुरू करो। एक सुन्दर-सी बहू सारे दिन घर में घूमे-फिरेगी, तो तुम्हारा जी भी बहलेगा। हमारे आफिस के कैलाश बाबू अपने मकान की नीचे की मंजिल में दो कमरे किराये पर उठाना भी चाहते हैं। मैंने तुम्हारे लिए वहीं प्रबन्ध कर दिया है। हाँ, शादी इसी मकान से होगी। तुम्हारी घर-गृहस्थी बसाने की सब जरूरी चीजें मैं अपनी तरफ से दहेज में दे दूंगा। तुम्हें न किसी चीज की कमी होगी और न कोई दिक्कत ही। बीच-बीच में मैं तुम्हारी खबर भी लेता रहूँगा। तो बोलो, शादी करोगे न?'

महेश ने सिर नीचे झुका लिया। शादी इतनी सुन्दर होती है और उसके लिए लोग इतने लालायित रहते हैं—यह तो आज तक उसे किसी ने भी नहीं बतलाया था।

'मेरी राय में तुम गोमती से शादी कर लो। ऐसी अच्छी दूसरी लड़की तुम्हें और कहाँ मिलेगी? इतनी शान्त, नम्र, मधुर—हाँ, अगर तुम्हें कोई आपत्ति न हो...'

'नहीं-नहीं, इसमें मुझे क्या आपत्ति हो सकती है ? लेकिन मामा—'

'उनकी चिन्ता न करो, यह भार तुम मेरे ऊपर छोड़ो। उन्हें. तुम्हारा जैसा अच्छा और कमाऊ लड़का कहाँ मिलेगा ? बल्कि वे तो यह खबर सुनकर खुश होंगे। तो तुम राजी हो न ?'

महेश ने सिर हिलाया। रामानन्द ने उसकी पीठ थपथपायी।

पण्डित ने पोथी-पत्रा देखकर शुभ दिन निकाला। सात दिन बाद ही श्री महेशकुमार की शादी कुमारी गोमती से हो गयी।

रामानन्द ने खुद खड़े होकर अपने सामने दोनों कमरों को सजवाया।

और रामानन्द सपरिवार जब घर लौटा, तब रात का एक बजा था।

सजी-सजायी गोमती अपने पति की प्रतीक्षा में बैठी थी। आखिरी अतिथि को विदा कर महेश उस कमरे में आया, तो उसमें फूलों की सुगन्ध उड़ रही थी।

महेश ने दोनों हाथों से गोमती को अपने निकट खींचते हुए कहा—'क्यों गोमा, यह कितना अच्छा हुआ ?'

गोमती ने कोई उत्तर नहीं दिया।

'मैंने तो कभी स्वप्न में भी कल्पना नहीं की थी कि मेरे जीवन में ऐसी बात भी संभव हो सकती है ! कौन जानता था कि मेरे जीवन में इतना सुख है !' अब उसने गोमती का आलिंगन और भी कसकर किया, एकदम छाती से चिपटा लिया। लेकिन सिर्फ क्षण भर के लिए ! और फिर, दूसरे ही क्षण उसने गोमती को धक्का देकर अलग कर दिया, ढकेल दिया। महेश चीख उठा, 'यह क्या गोमती ?' इससे ज्यादा वह और कुछ नहीं कह सका, उसका खून ठंढा पड़ता जा रहा था।

अचानक पागलों की तरह उसने गोमती को हाथ पकड़कर उठाया और उसे खींचता हुआ दरवाजे तक घसीट ले आया। बाएँ हाथ से

दरवाजा खोलकर उसने गोमती को धक्का देकर बाहर निकाल दिया और दरवाजा बन्द कर लिया।

महेश बिस्तरे पर लेट गया। हाथ-पैर फैलाकर उसने अपनी आँखें बन्द कर लीं—उसका अपना कोई भी नहीं है, कोई भी नहीं है। वह एकाकी है, एकदम अकेला। कल से वह नया जीवन शुरू करेगा—सब पुराना हिसाब-किताब साफ कर देगा।

उसने करवट बदली—अब वह सोयेगा। कल सुबह जब वह सोकर उठेगा, तो आज रात की यह कहानी जैसे उसे याद ही न हो, इस तरह सब कुछ भूल जायगा, बिल्कुल भूल जायगा।

पर लाख कोशिश करने पर भी उसे नींद नहीं आयी। गिर्जा की घड़ी में टन-टन दो बजे। कुछ देर तक बिछौने पर पड़ा-पड़ा वह छट-पटाता रहा। फिर उठ बैठा। पलंग से नीचे उतरा। कमरे में अँधेरा था, उसने बत्ती नहीं जलायी। दबे पैरों दरवाजे के पास आया। कुछ क्षण तक चुपचाप खड़ा रहा। फिर दरवाजा खोला, बाहर आया। देखा, गोमती वैसी ही सिर झुकाये चुपचाप खड़ी है।

धीरे-धीरे महेश ने आगे बढ़कर कहा, 'चलो, भीतर चलो।'

चौखट पार कर महेश ने पूछा—'बोलो, किसका है?'

कोई उत्तर सुनाई नहीं पड़ा।

उसने बिजली का स्विच दबाया। देखा कि गोमती की आँखों से अश्रुधारा बह-बहकर उसकी कमीज पर पड़ रही है।

पत्थर जैसी आँखों में भी पानी आ गया!

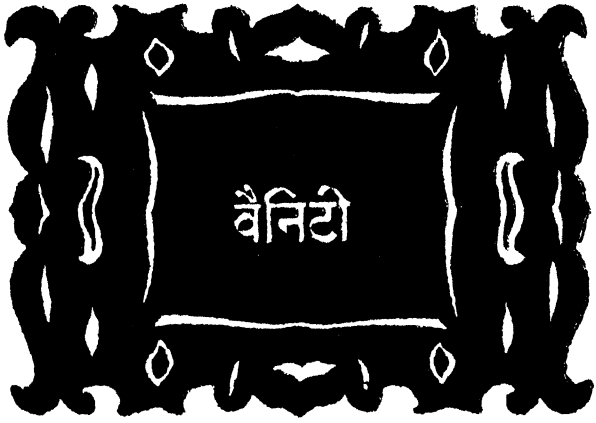

अन्त में प्रतीक्षित आह्वान आया। हाथ में खुली हुई फ़ाइल को बन्द करते हुए पुष्पा खड़ी हो गयी। वैनिटी-बैग से रूमाल निकाल कर उसने अपना मुँह पोंछा। मेज़ पर रखा हुआ पानी का गिलास उठाया और तीन-चार घूंट पी लिया। पीछे हाथ डालकर साड़ी का आँचल खींचा। फिर

धीरे-धीरे चलकर स्विंग-डोर खोलते ही एकदम डायरेक्टर के सामने जा पहुँची।

मि० तलवलकर ने मुँह से जलता हुआ चुरूट निकालकर ऐश-ट्रे में रखा। सामने की कुर्सी की ओर इशारा करते हुए कहा, 'बैठिए, खड़ी क्यों है?'

साड़ी सँभाल कर पुष्पा बैठ गयी।

'क्यों, क्या बात है?' मि० तलवलकर के गंभीर मुख पर हँसी की एक झलक दिखाई दी। पुष्पा चुप, साड़ी का आँचल अपनी अंगुली में लपेटने लगी।

'एकाएक आपने इस्तीफ़ा देने का इरादा क्यों किया? क्यों, क्या कहीं से कोई अच्छा ऑफ़र मिला है?'

'जी नहीं।'

'तब? अब नौकरी नहीं करेंगी? यह तो अच्छी बात है। अगर आवश्यकता न हो, तो फिर नौकरी करने का प्रश्न ही नहीं उठता। वैसे भी स्वाभाविक अवस्था में युवतियों को नौकरी करने की कोई ज़रूरत तो नहीं पड़ती। लेकिन हाँ, ज़रूरत होने पर करनी ही पड़ती है। फिर भी एक बात कहूँ, यदि कुछ ख्याल न करें। उम्र में आप मेरी लड़की के समान हैं। दुनिया का थोड़ा-बहुत अनुभव भी आपको है ही। आपका सर्विस-रिकार्ड भी बहुत अच्छा है। नेक्स्ट हायर स्केल के लिए मैंने आपका नाम रिकोमेन्ड भी कर दिया है। आशा है, अवश्य हो जाएगा। ऐसी अवस्था में रिज़ाइन करना ठीक है? अगर बहुत ही ज़रूरी न हो, तो छुट्टी की अर्जी दे दीजिए। एक महीने, दो महीने, और नहीं, तो तीन महीने की। मैं मंजूर कर दूँगा। न हो, छुट्टी के बाद ही रिज़ाइन कीजिए। क्या ख्याल है? इस्तीफ़ा दे देना क्या ठीक होगा? एक बार इस पर फिर से विचार कीजिए।'

पुष्पा ने पहले ही सब सोच लिया है। उसकी ओर से यह काम पिता ने कर लिया है। वह तोकेवल उन लोगों के आदेश का पालनमात्र कर रही है।

पुष्पा को दुविधा में पड़ा देखकर मि० तलवलकर ने कहा, 'अभी फ़ौरन ही कुछ कहने के लिए मैं आपसे नहीं कहता। दो-एक दिन सोच लीजिए। अपने नाते-रिश्तेदारों से भी एक बार सलाह-मशविरा कर लीजिए। फिर आपको जो ठीक जँचे कीजिए। अभी कम-से-कम इसे ले जाइए।' इस्तीफ़ा की अर्जी पुष्पा के हाथ में मि० तलवलकर ने दे दी।

अर्जी को अपने वैनिटी-बैग में रखते हुए पुष्पा बाहर निकली। बाहर अन्य सहकर्मिणियाँ उत्सुक थीं। क्या बात है? बेवक्त डायरेक्टर के कमरे में पुष्पा की बुलाहट क्यों हुई? दुर्गा ने कहा, 'क्यों री, तेरा मुँह इतना चढ़ा हुआ क्यों है? बुढ़ऊ ने क्या बहुत डाँट-डपट की है?'

'हाँ।' उसने झूठ कह दिया।

'क्यों?'

'परसोंवाली उस चिट्ठी का उत्तर अभी तक क्यों नहीं दिया गया, इसकी कैफ़ियत माँगते थे।' पुष्पा अपनी सीट पर बैठ गयी। चलो, झूठ बोलने से छुटकारा तो मिल गया। नहीं तो, न जाने क्या-क्या कहना पड़ता। अपने इस्तीफ़ा के बारे में उसने किसी को भी कुछ नहीं बताया। बताना चाहती भी नहीं। बताते ही हज़ारों प्रश्न होंगे।

पुष्पा की शादी हो रही है। वह स्वयं नहीं कर रही है। लेकिन इतने दिनों तक जिनके साथ बैठकर काम किया, उनमें से किसी को भी वह नहीं बता सकेगी। पुष्पा यह कैसे बता सकती है कि दफ्तर में नौकरी करने की बात अगर उसकी ससुरालवालों को ज़रा भी मालूम हो गयी, तो फिर शादी नहीं होगी, सम्बन्ध टूट जाएगा। नौकरी करनेवाली युवती को घर की बहू बनाने के लिए ससुरालवाले तैयार नहीं हैं। यह बात पिता ने खुद उससे नहीं कही, भाभी के द्वारा कहलवा दी थी।

'अब, बीबीजी, तुम नौकरी छोड़ दो। हमारे ही रास्ते पर चली आओ।' भाभी ने कहा था।

'क्यों, क्या बात है?'

'जैसे तुम कुछ नहीं जानतीं। उन लोगों को नौकरी करनेवाली बहू नहीं चाहिए। नौकरी करनेवाली लड़कियों से उन्हें नफ़रत है। सुनते हैं, इससे पहले भी कहीं सगाई हुई थी, लेकिन लड़की कहीं नौकरी करती थी, इसलिए सम्बन्ध टूट गया। पहले से ही हमें होशियार हो जाना चाहिए। अब नौकरी छोड़कर मेरे पास दो-चार दिन घर-गृहस्थी चलाना सीख लो, समझीं?'

यह सुनकर पुष्पा को ऐसा लगा था, जैसे इस बात में कुछ व्यंग्य भी छिपा हुआ है। उसके आत्म-सम्मान को मानो कुछ धक्का लगा था। लेकिन बावजूद इसके, चुपचाप अपना त्याग-पत्र डायरेक्टर के कमरे में भेजना वह नहीं भूली थी। अपनी शादी के बारे में दफ्तर में किसी को को कुछ नहीं बताया जा सकता। अपनी शादी में किसी को निमंत्रित भी नहीं कर सकेगी। अगर कहीं बात खुल गयी! पिता ने पहले से ही सावधान कर दिया है। पुष्पा ऐसी नासमझ भी तो नहीं है। जैसा देश, वैसा वेश। यह तो उसे स्वयं भी समझना चाहिए। कितनी मुश्किल, दौड़-धूप और परेशानियों के बाद उन्होंने यह सम्बन्ध ठीक किया है।

पुष्पा की कमाई के सवा सौ रुपये कम होने पर भतीजे के दूध में कमी हो जाएगी, छोटे भाई का मास्टर छुड़ाना होगा। दादी की दवा-दारू बन्द हो जाएगी। यह सब हुआ, तो होने दो; लेकिन पुष्पा का ब्याह तो होगा ही। वह जन्म-भर कुँआरी थोड़े ही बैठी रहेगी!

दूसरे दिन फिर पुष्पा ने फ़ोल्डर में रखकर अपना इस्तीफ़ा डायरेक्टर के पास भिजवा दिया। इस बार मि० तलवलकर ने सिर्फ़ इतना ही कहा, 'तो आप इस्तीफ़ा देने के अपने निश्चय पर ही अटल हैं?'

'जी हाँ, इसके अलावा और कोई उपाय भी नहीं है।'

'ठीक है, आगामी सोमवार से आपका इस्तीफ़ा मंजूर हो जाएगा।' चुरूट का धुआँ छोड़ते हुए मि० तलवलकर ने कहा। नमस्ते करके पुष्पा बाहर आ गयी।

धीरे-धीरे सारे दफ्तर में यह बात फैल गयी। 'क्या बात है पुष्पा, शादी कर रही हो? पहले से कुछ नहीं बताया?' उस कोने से प्रमिला और इस कोने से प्रभा, दोनों जैसे एक साथ ही पूछ बैठीं।

पुष्पा को इसी बात का डर था। अब वह इन सबको क्या जवाब दे? सच बात भी इन लोगों को नहीं बतायी जा सकती। जिन एक-दो से प्रगाढ़ मित्रता है, उन्हें बाद में बता देगी, उसने यह सोचा था। लेकिन इस वक्त उसे एक-न-एक बहाना तो बनाना ही पड़ेगा। लेकिन क्या बहाना बनाए? 'मैंने एम० ए० करने का निश्चय किया है यूनिवर्सिटी में दाखिल होकर।'

'ओ! तो यूँ कहो। हम तो समझीं थीं कि दावत मिलेगी। धत् तेरे की!'

कुछ देर बाद यह चर्चा बन्द हुई। पुष्पा को उम्मीद नहीं थी कि इतनी जल्दी छुटकारा मिल जाएगा।

सप्ताह के बाक़ी दिनों में कोई विशेष काम नहीं है। कभी इसकी मेज़ पर, तो कभी उसकी मेज़ पर। किसी तरह समय काटना है। अन्त में यह भी खत्म हुआ। शनिवार के दोपहर को दो बजे सड़क पर खड़ी होकर पुष्पा ने सामनेवाली बिल्डिंग की ओर गौर से देखा। दुःख-सुख में इस बिल्डिंग में उसके प्रायः ढाई साल कटे हैं। कालेज से निकलते ही वह शर्मीली लड़की लाचार होकर नौकरी करने आयी थी। शुरू-शुरू में तो उसे रुलाई आती थी। लेकिन धीरे-धीरे आदत पड़ गयी—पड़ जाती है।

सोमवार को अब साढ़े आठ बजे नहाने-धोने की जल्दी नहीं होगी। अब तो सिर्फ़ एक विशेष मुहूर्त की प्रतीक्षा रहेगी।

वह प्रतीक्षा भी शीघ्र ही खत्म हो गयी। लाल चुनरी ओढ़े पुष्पा एक दिन ससुराल आ गयी।

प्रारम्भ के दो-तीन दिन तो शोरगुल और आवभगत में ही कटे। नाते-रिश्तेदारों से सारा मकान भरा हुआ था। नयी बहू को देखने आनेवालियों का अन्त नहीं। पुष्पा थोड़ा-बहुत गाना भी जानती थीं, जाने कैसे यह बात फैल गयी। लेकिन पहले दो-तीन दिन तो उसने किसी भी प्रकार अपना मुँह नहीं खोला। पर अब कोई उपाय नहीं था। फ़र्स्ट इयर में पढ़नेवाला देवर बोला, 'सुना है भाभी, आप बहुत अच्छा गाना जानती हैं। ज़रा सुनाइये न!' आठवीं कक्षा की छात्रा किशोरी ननद ने फ़ौरन ही हारमोनियम भी आगे सरका दिया, 'लो भाभी, अब और नखरे न करो, ज़रा सुना दो, न!'

पुष्पा को गाना ही पड़ा।

कुछ देर बाद बूढ़े ससुर ने भी बुलाया। नयी बहू के गुणों की खबर इस बीच उनके कानों तक पहुँच गयी थी। ननद सत्या ने कहा, 'तुम्हारी क़िस्मत बहुत तेज़ है, भाभी। आज हमारे बाबूजी को भी गाना सुनने का शौक़ चर्राया है। हमें तो हारमोनियम लेकर बैठी हुई देखते ही बिगड़ जाते हैं। भगवान् करे, तुम्हारी बदौलत हमें भी गाने का लाइसेंस मिल जाए।'

ससुर महोदय ने भजन की ही फ़रमाइश की। आधुनिक गानों से उन्हें नफ़रत है। अतः भजन ही सुनाना पड़ा।

गत उत्सव की धूमधाम और भी दो-तीन दिन रही। फिर धीरे-धीरे मकान खाली होने लगा। ज्वार का जल उतर जाने पर पुष्पा को यह देखने का सुयोग मिला कि नदी की वास्तविक सीमा कितनी है। वृद्ध ससुर वात के रोग से पंगु हैं। प्रायः सौ रुपया माहवार पेंशन मिलती है। गीतापाठ और पूजा आदि के बाद जो समय बचता है, उसमें आज-कल के लड़कों की अनुशासनहीनता तथा उच्छृङ्खलता और लड़कियों की

चाल-ढाल तथा फ़ैशन-प्रियता की निन्दा करते रहते हैं। इस दृष्टि से सास ज्यादा बुद्धिमान हैं। पति की इच्छा के खिलाफ़ भी लड़कियों को पढ़ा रही हैं। गाना भी सिखा रही हैं। बिना इसके आजकल काम नहीं चलता। शादी के वक्त बड़ी मुश्किल होती है। दो देवर हैं, एक कालेज में पढ़ता है और दूसरा स्कूल में। तीन ननदों में दो स्कूल में पढ़ती हैं और छोटी अभी सिर्फ पाँच साल की है। इसके अलावा परिवार में एक विधवा बुआ भी है।

अभी तक पुष्पा अपने पति जगतराम को ठीक से नहीं समझ पायी है। बहुत हँसमुख या खुले दिल का आदमी नहीं मालूम पड़ता। जैसे कुछ पुराने विचारों का है। एक युग पहले अगर पैदा हुआ होता, तो ज्यादा अच्छा था। अवश्य, इन कई दिनों में और वह भी नाते-रिश्तेदारों की भीड़ में, एक व्यक्ति को और कितना अधिक जाना-पहचाना जा सकता है।

पुष्पा ने सोचा, वह जगतराम से पूछेगी कि पहले जिस लड़की से मँगनी हुई थी, उस रिश्ते को तोड़ने में उसका भी हाथ था या नहीं? सांसारिक अभावों में मनुष्यत्व की बलि देने के बजाय युवतियों का नौकरी करना अच्छा क्यों नहीं है? लेकिन ये सारी बातें अभी पूछने में संकोच होता है। इसके लिए और भी अधिक घनिष्ट परिचय की जरूरत है। शादी से पहले उसने सुना था कि जगतराम किसी दफ्तर में काम करता है। प्रायः ढाई सौ रुपये मासिक वेतन है।

पुरानी दीवार की सस्ती सफ़ेदी फीकी पड़ते ही यहाँ-वहाँ दरारें नज़र आने लगीं।

उस दिन सुबह छुट्टा काम करने वाली नौकरानी नहीं आयी। चाय के बर्तन खुद माँजकर पुष्पा ने चाय बनायी। चाय पीने के बाद सास बोलीं, 'अरे, आज महरी नहीं आयी।' अब पुष्पा को खुद ही कहना पड़ा, 'तो क्या हुआ, बर्तन-भाँड़े मैं साफ़ कर देती हूँ।'

'नहीं-नहीं, तुम क्यों ? मैं माँज देती हूँ। तुम इतने में रसोई की तैयारी करो। नौ बजे तक जगत के लिए खाना बन जाना चाहिए। सत्या तुम्हारी मदद करेगी।'

पुष्पा की आँखों के आगे अपनी भाभी की सूरत नाच गयी—समय पर खाना तैयार करने के लिए बेचारी को कैसी मुसीबत उठानी पड़ती थी। उसे डर था कि ठीक समय पर खाना तैयार होगा भी या नहीं। लेकिन तैयार हो गया।

दूसरे दिन भी महरी नहीं आयी। सास बड़बड़ाने लगीं। फिर महरी को कोसते हुए खुद ही बर्तन माँजने उठीं। पुष्पा ने सत्या की बात सुनी, 'क्यों झूठमूठ महरी को बुरा-भला कह रही हो। उसे तुमने कोई हमेशा के लिए थोड़े ही रखा था ? उससे यही तय हुआ था कि शादी के बाद दस-बारह दिन और काम कर देगी। इसका यह मतलब नहीं, कि वह बराबर काम करती रहेगी। और भाभी तो अब इस घर की ही हैं, उन्हें तो यहाँ रहना है, फिर उनके सामने झूठी शान बघारने से क्या फायदा ! आज भले ही न बताओ, लेकिन दो दिन बाद तो आप-ही-आप सब मालूम हो जाएगा।'

सास ने नाराज़ होकर चिढ़ते हुए क्या कहा, यह समझ में नहीं आया। सत्या उठी और पुष्पा के पास जाकर रसोई में चुपचाप बैठ गयी।

इस लड़की ने दो दिन में ही उसे अपना बना लिया है। आजकल उसके स्कूल की छुट्टियाँ हैं। रसोई का काम खत्म होते ही सत्या अपने स्कूल का टास्क लेकर उसके पास आ बैठती है। 'ज़रा यह ट्रांसलेशन देख दो। यह सवाल कैसे होगा ? और यह पार्जिङ्ग तो मुझसे होता ही नहीं।' पुष्पा को वह बहुत अच्छी लगती है। पढ़ने-लिखने के प्रति इस लड़की का कितना आग्रह है ! सैकड़ों प्रश्न करती है।

'अच्छा भाभी, लड़कियों का नौकरी करना क्या बुरी बात है ?'

पुष्पा चौंकी। लेकिन फ़ौरन ही सँभल कर बोली, 'नहीं, बुरी बात क्यों है? बल्कि यह अच्छा ही है। हम लोगों जैसे निम्न-मध्यम वर्ग के परिवार में अगर औरतें कुछ कमाने लगें, तो घर-गृहस्थी का खर्च चलने में सहूलियत ही होगी। हाँ, अगर पुरुष की आमदनी से ही सारा खर्च अच्छी तरह चल जाए, तब दूसरी बात है।'

'मेरी भी यही राय है। लेकिन बाबूजी लड़कियों के नौकरी करने पर बहुत नाराज़ होते हैं। और हमारे भैया उनसे भी दो क़दम आगे हैं।' यह कहकर सत्या चुप हो गयी, जैसे कुछ सोच में पड़ गयी हो। बोली, 'भैया की पहले एक जगह सगाई हुई थी, सब बातें पक्की हो गयी थीं। भैया ने खुद लड़की को देखा था, पसन्द भी किया था। लेकिन अन्त में सगाई टूट गई। वह लड़की किसी दफ्तर में काम करती थी। सगाई के वक्त यह बात मालूम नहीं हुई थी। उधर उस लड़की बेचारी ने अपनी नौकरी छोड़ दी। लेकिन नौकरी छोड़ने से क्या होता है। बाबूजी तो जैसे-तैसे राजी भी हो जाते, लेकिन भैया एकदम अड़ गये। मैं यह नहीं कहती कि वहाँ शादी होने पर ही अच्छा होता; तब तो तुम नहीं मिलतीं भाभी।'

'हूँ, मैं तुम्हें बहुत अच्छी लगती हूँ?'

'हाँ भाभी, बहुत अच्छी हो।'

'तुम्हारे भैया की क्या राय है?' हँसते हुए पुष्पा ने पूछा।

'उनकी राय वे ही जानें।' सत्या ने मुँह बनाते हुए कहा, 'सुनो, भाभी, मैंने पक्का निश्चय किया है कि पढ़-लिखकर नौकरी करूँगी। ज़रूरत है, सिर्फ़ इसलिए ही नहीं, बल्कि इन लोगों के दकियानूसी विचारों का प्रतिवाद करने के लिए भी। अच्छा भाभी, भगवान न करे कि ऐसा हो, मान लो यदि आज किसी कारण भैया की नौकरी छूट जाए और तुम्हें कोई नौकरी मिले, तो तुम नहीं करोगी?'

'तुम्हें अभी से इतनी बातें सोचने की ज़रूरत नहीं है। अभी तो अच्छी लड़की की तरह सिर्फ़ पढ़ने-लिखने में ही मन लगाओ। उसके बाद फिर देखा जाएगा।'

'फिर देखा जाएगा, कह देने से ही क्या समस्या हल हो जाती है?'

जगतराम के पास अपने दफ्तर का 'पैटी-कैश' रहता था, प्रायः पाँच सौ रुपये। खुदरा कामों के लिए प्रायः ही जरूरत पड़ती रहती थी। लेकिन पिता की बीमारी के वक्त ये सारे रुपये खर्च हो गये। सोचा था कि धीरे-धीरे जोड़कर पूरा कर देगा। पर अभाव की गृहस्थी में आज तक पूरा नहीं कर सका। अब जगतराम का ट्रांसफ़र दूसरे डिपार्टमेन्ट में होनेवाला है। इससे पहले उसे रुपयों का हिसाब देना होगा। लेकिन रुपये है कहाँ? दोस्तों से उधार माँगा, पर कोई नहीं दे सका। देना भी नहीं चाहते, एक साथ इतने रुपये। अन्त में यह बात घर में बतानी पड़ी। लेकिन समाधान नहीं। माँ के पास तो अब इतने रुपये हैं नहीं। जेवर? लेकिन जेवर भी माँ के पास कहाँ हैं? एक-एक कर सब तो बिक चुके हैं।

फिर क्या उपाय है? पुष्पा है। नयी है, तो क्या हुआ! है तो इस घर की बहू ही। पति की मुसीबत तो उसकी भी है।

'ठीक है, लेकिन मैं उससे नहीं कह सकता।' जगतराम ने कहा।

'और मैं सास होकर कैसे कह सकती हूँ?'

लेकिन किसी को कुछ नहीं कहना पड़ा। चौके के बाहर ये बातें हो रही थीं और चौके में बैठी पुष्पा सब सुन रही थी। सत्या को भेजकर उसने सास को बुलाया। बोली, 'जेवर पहनने का मुझे कोई शौक़ नहीं है, बक्स में ही तो पड़े रहते हैं। उनसे कहिए कि घबराने की कोई बात नहीं। उन्हें वे ले जाएँ और कल सारे रुपये अदा कर दें।'

सास ने इतनी अधिक आशा नहीं की थी। कुछ आश्चर्य से पुष्पा के मुँह की ओर देखती रहीं। फिर धीरे-धीरे चौके से बाहर निकलीं। जगतराम भी बाहर खड़ा-खड़ा सब सुन रहा था। अतः उससे भी कुछ कहना नहीं पड़ा। सारे मकान में जैसे एक अजीब खामोशी छा गयी।

लेकिन अर्थ के प्रयोजन का तो कोई अन्त नहीं है। शादी के समय जगतराम के पिता ने अपनी पुरानी आदत के अनुसार सामर्थ्य और शक्ति से कुछ अधिक ही खर्च किया था। दुकानदारों का कुछ कर्ज भी हो गया था। कहा था कि महीने भर बाद ही चुका देंगे। एक महीने की जगह प्रायः दो महीने बीत गये, लेकिन रुपये नहीं चुका सके। दुकानदार को दो बार लौटा चुके थे। तीसरी बार भी जब उसे खाली हाथ लौटना पड़ा, तो शिष्टता और सभ्यता का नक़ाब उतारकर वह खूब उल्टी-सीधी सुना गया। दुकानदार के पचास रुपये चुकाने की तो सामर्थ्य है नहीं, लेकिन लड़के का ब्याह किये बिना नहीं रहा जाता। पुष्पा को ऐसा लगा जैसे यह सारा अपराध उसी का है, जगतराम की अक्षमता का।

रात को सारा संकोच हटाते हुए पुष्पा ने पूछा, 'गहने के सारे रुपये क्या दफ्तर के काम में लग गये?'

'क्यों?' जगतराम की भौंहें टेढ़ी हो गयीं।

'इसलिए पूछ रही थी कि आज दुकानदार आया था। पिताजी का अपमान कर गया। रुपये अगर नहीं बचे हों, तो मेरी राय है कि अंगूठी और झुमके भी बेच दो। कम-से-कम छोटा-मोटा उधार तो चुक ही जाएगा। फिर कोई दिक्कत नहीं होगी।'

'हूँ', जगतराम ने गंभीर स्वर में कहा।

गंभीर तो हो गया, लेकिन दो दिन बाद ही पुष्पा की अँगूठी और झुमके ले गया।

दो महीने में ही पुष्पा के शरीर पर से शादी के सब चिह्न गायब हो गये। न कपड़े-लत्ते और न जेवर। वह पुरानी बहू जैसी हो गयी।

स्कूल छुड़ाकर छोटे देवर और ननद की पढ़ाई का भार उसने अपने ऊपर ले लिया। फ़ीस के दस रुपये महीने बचेंगे। इच्छा थी कि सत्या का भी स्कूल छुड़ा दे। लेकिन पढ़ने-लिखने में वह बहुत तेज़ है, स्कूल में फ्री पढ़ती है। इसलिए फ़ीस का प्रश्न ही नहीं उठता।

मंदी के कारण जगतराम की कंपनी को काफ़ी घाटा हुआ। इस कारण प्रायः एक-चौथाई कर्मचारियों को जवाब दे दिया गया और बाकी बचे हुए लोगों की चालीस प्रतिशत तनख़्वाह कम कर दी गयी। जगतराम को भी सौ रुपये कम मिले। वेतन में कटौती के साथ-साथ घर-ख़र्च में भी कमी करनी पड़ी। सबसे पहले दूध बन्द हुआ। पाँच वर्ष की छोटी ननद दूध के सिवाय और कुछ खाती-पीती नहीं। लेकिन जब सामर्थ्य ही नहीं, तब फिर यह लाड़-प्यार कैसा। बूढ़े ससुर को भी थोड़ा-बहुत दूध मिलता था। अब वह भी बन्द। सुबह दाल में देशी घी की जो छौंक लगती थी, वह भी बन्द हो गयी। पर इतनी किफ़ायतशारी करने पर भी कितने रुपये बच सकते हैं?

'आमदनी न बढ़े, तो क्या सिर्फ़ ख़र्च कम करके ही ज़रूरतें पूरी की जा सकती हैं?' बुआ ने कहा था। पुष्पा उस समय बाथ-रूम में थी। 'लेकिन तुम लोगों की तो उल्टी खोपड़ी है। आज के ज़माने में हज़ारों औरतें काम कर रही हैं और इसमें बुराई भी क्या है? अब कोई हमारा पुराना ज़माना तो रहा नहीं। अगर उस कमाने वाली लड़की से शादी हुई होती, तो आज यह दिन क्यों देखना पड़ता। अपनी कमाई के चार पैसों से वह गृहस्थी का ख़र्च चलाने में कुछ मददगार ही साबित होती। अरे भई, जब जैसा ज़माना हो, तब वैसा काम करना चाहिए।'

कुछ देर पहले ही जगतराम दफ्तर से लौटा था। दीवार का सहारा लिये आराम कर रहा था। बुआ की बात सुनकर जल-भुन गया। 'हूँ, सठिया गयी हो, अपनी बहू की कमाई में खाऊँगा। मेरे मर जाने के बाद, उससे पहले नहीं।'

'तेरी तो मति मारी गयी है।'

जगतराम की माँ बोली, 'तुम तो जानती हो, जगत को यह बात पसन्द नहीं है। तब फिर उसके सामने ही ऐसी बेमतलब की बातें क्यों करती हो?'

'अच्छा भई, मैं चुप हो जाती हूँ।' बुआ अपनी जप की माला लेकर चल दीं।

कई दिनों से सोचते-सोचते अन्त में पुष्पा ने कह ही दिया, 'सुनो, मेरा ख्याल है, न हो, तो मैं भी कहीं नौकरी की कोशिश करूँ।'

'वान्टेड' के कालमों पर जगतराम नज़र दौड़ा रहा था। बोला, 'क्या कहा?' पुष्पा ने उसी बात को फिर दुहराया।

'एकाएक तुम्हें नौकरी करने का शौक़ क्यों चर्राया?' अखबार पर अपनी नज़र गड़ाये हुए ही जगतराम ने कहा।

'इस मुसीबत में कुछ तो मदद होगी।'

'तुम्हें यह सोचने की ज़रूरत नहीं। अभी मैं मरा नहीं हूँ, ज़िन्दा हूँ।' अखबार से अपना मुँह अच्छी तरह ढँकते हुए जगतराम ने जवाब दिया।

दूसरे महीने जगतराम को भी नोटिस मिल गया, साथ-ही-साथ नोटिस-पीरियड का वेतन भी। कम्पनी अब अपना कारोबार बन्द कर रही है।

बुआ ने जब यह सुना, तो अपना माथा ठोंक लिया। बोलीं, 'यह बहू भी घर में कैसी आयी कि चार महीने बीतते-न-बीतते ही लड़के की नौकरी भी चली गयी। औरतों के भाग्य से लक्ष्मी की वृद्धि होती है, लेकिन हमारी तो किस्मत ही फूटी हुई है।'

सास ने स्पष्ट तो कुछ नहीं कहा, लेकिन हाव-भाव से यह ज़ाहिर कर दिया कि वे भी इस राय से सहमत हैं। परिवार के अन्य लोगों के मुख पर भी एक प्रकार के आतंक की छाया-सी नज़र आयी। हालाँकि एक माह का वेतन एडवांस मिला है, लेकिन उससे कितने दिन गुजर-बसर हो सकती है।

जगतराम जी-जान से कोशिश कर रहा है। एक के बाद एक दरवाज़ा खटखटा रहा है। लेकिन आज के ज़माने में सिर्फ़ कोशिश करने से ही तो नौकरी नहीं मिल जाती। सब जगह एक ही उत्तर—'नो वेकेन्सी।'

धीरे-धीरे एडवांस के रुपये भी खत्म हो गये। ससुर की पेंशन ही अब एकमात्र सहारा है।

पहले दुविधा थी। संकोच और भय भी था। लेकिन फिर भी पुष्पा ने अपना सारा साहस बटोरते हुए कह ही दिया, 'नासमझ मत बनो, ज़रा मेरी बात पर ग़ौर करो।'

'किस बात पर?' सोने का बहाना करते हुए भी जगतराम सो न सका।

'मेरे नौकरी करने के बारे में। आवश्यकता है, लेकिन तुम मेरी सहायता स्वीकार नहीं करोगे। क्या इसका यह अर्थ नहीं कि तुम मेरी जिम्मेदारी को अस्वीकार करते हो?'

पुष्पा की आवाज़ और बातें करने के ढंग से जगतराम चौंका। उसके मुख पर दृढ़ भाव देखकर जगतराम ने अपनी आँखें नीची कर लीं। उसे ऐसा लगा, जैसे वह वाक़ई अपराधी है। बहुत धीमी आवाज़ में बोला, 'तुम क्या नौकरी करोगी? और अब तुम्हें नौकरी ही कौन देगा?'

पुष्पा भी चौंकी। जगतराम की आवाज़ में विरोध का आभास नहीं है, यह आश्चर्य की बात है।

'तो सुनो,' पुष्पा ने कहा, 'तुम लोग नहीं जानते, शादी से पहले मैं नौकरी करती थी।'

'ऐं, क्या कहा? यह तो मालूम नहीं था।' जगतराम उठकर सीधा बैठ गया।

'हाँ, तुमलोगों को यह बताया नहीं गया था। नहीं तो शायद तुम यह सम्बन्ध भी तोड़ देते। पिताजी को यही डर था। इसलिए शादी की बात पक्की होते ही मैंने नौकरी से इस्तीफ़ा दे दिया।'

'इस्तीफ़ा दे दिया?' मानो बहुत निराश होते हुए जगतराम ने कहा।

'हाँ, इस्तीफ़ा दे दिया। लेकिन तो भी आशा है कि एक बार मुलाकात करने पर फिर नौकरी मिल जायगी। मेरी जगह उस बीच में उन्होंने शायद किसी को रख लिया होगा। लेकिन इससे क्या, और भी तो ज़रूरत हो सकती है। अगर ज़रूरत होगी, तो सबसे पहले मुझे ही 'चान्स' मिलेगा, इसका मुझे विश्वास है।'

'पर माँ, पिताजी—वे क्या राज़ी होंगे?'

'यह भार तुम्हारे ऊपर है। जीवन-संघर्ष में अस्तित्व बनाये रखने के लिए यह ज़रूरी है, उन्हें यह समझाते हुए तुम्हें राज़ी करना होगा। पर इससे पहले, कल दोपहर को तुम एक बार मेरे साथ चलो। मैं डायरेक्टर से जाकर मिलूँगी। अभी माँ और पिताजी को कुछ बताने की ज़रूरत नहीं, बेमतलब ही बात बढ़ेगी।'

'ठीक है, चला चलूँगा।' थके और हारे हुए तथा कुछ अपराधी जैसे स्वर में जगत ने कहा।

चार महीनों में आज पहली बार पुष्पा ने अपने पति को जैसे पूर्ण रूप से पाया।

दूसरे दिन सुबह जल्दी-जल्दी खाना बनाकर वह निबट गयी और जगतराम के साथ बाहर चल दी। दफ्तर में जब पहुँची, तो प्रायः सवा बजा था।

जगतराम को विज़िटर्स-रूम में बैठाकर पुष्पा दफ्तर में घुसी।

लंच टाइम में दफ्तर प्रायः खाली-खाली-सा था। काफ़ी लोग टिफ़िन करने चले गये हैं। जो तीन-चार युवतियां भीतर थीं, उन्होंने पुष्पा को घेर लिया।

प्रमीला बोली, 'आज घर-बार छोड़कर अचानक दफ्तर में कैसे ? हमें दर्शन देकर कृतार्थ करने आयी हो ?'

'नहीं, कुछ काम है।'

'तुम्हारा तो अब सारा काम-काज घर-गृहस्थी में है। दफ्तर का भार तो किसी दूसरे पर है।'

'उस भार को ही तो अब मैं हल्का करना चाहती हूँ। नौकरी करूँगी। यहाँ कोई जगह खाली है ?'

सब उपस्थित युवतियों ने पुष्पा की ओर जैसे कुछ आश्चर्य से देखा।

'यह क्यों री ? तब फिर अच्छी-भली लगी-लगाई नौकरी क्यों छोड़ी थी ? ऐसा ही था, तो छुट्टी ले लेती ! अब क्या वेकेन्सी है। तुम्हारी जगह तो नया एपॉयन्टमेंट हो गया है।'

एकाएक बाहर के विज़िटर्स एनक्लोज़र की ओर प्रमीला की दृष्टि गयी। वह सज्जन भी इधर ही देख रहे थे। 'वहाँ कौन बैठा है, पुष्पा ? क्या तुम्हारे साथ आये हैं ?'

'सिर्फ़ साथ ही नहीं, बल्कि जीवन-साथी हैं।' पुष्पा ने जवाब दिया।

'अरे वाह, तू बड़ी खराब है। खुद तो गप्पें लड़ा रही है और उन्हें वहाँ बैठा दिया है। यहाँ बुला, हमसे तो मिला।' एक ही साँस में प्रमीला इतनी बातें कह गयी।

पुष्पा आगे बढ़ी और जगतराम को बुला लायी। एक-एक कर उसने सबसे परिचय कराया।

इतने में ही सीढ़ियों पर जूते की आवाज़ सुनाई दी। मि० तलवलकर आ रहे हैं। सब अपनी-अपनी सीट पर बैठ गयीं। स्विग-डोर खोलते हुए मि० तलवलकर अपने कमरे में घुस गये।

'मि० तलवलकर से एक बार मिल लूं। इतने तुम यहाँ बैठो।' पुष्पा ने मि० तलवलकर के कमरे की ओर पैर बढ़ाये।

बैरा के हाथ स्लिप भेजते ही फ़ौरन भीतर से बुलाहट आयी।

नमस्ते कर पुष्पा कुर्सी पर बैठ गयी। बिना किसी प्रकार की भूमिका बाँधे ही बोली, 'आपके पास एक विशेष काम से आयी हूँ।'

'कहिए, क्या बात है?'

'आपके यहाँ कोई 'वेकेन्सी' है क्या?' पुष्पा ने उत्सुकता से पूछा।

'किसके लिए?' मि० तलवलकर ने गम्भीरता से प्रश्न किया।

'मेरे अपने लिए ही।'

'मुझे बहुत दुःख है मिस—सॉरी—मिसेज़—'

'मिसेज़ वर्मा।' पुष्पा ने वाक्य पूरा किया।

'थैंक यू, मिसेज़ वर्मा! आपकी जगह नयी नियुक्ति हो गयी है। आप अपना नया पता इसटैब्लिशमेन्ट सेक्शन में दे जाइए और साथ ही एक एप्लिकेशन भी। नेक्स्ट वेकेंसी होते ही आपकी नियुक्ति अवश्य होगी।'

'धन्यवाद, मि० तलवलकर!' नमस्ते करके पुष्पा खड़ी हो गयी।

अर्जी देकर जगतराम के साथ पुष्पा चल पड़ी।

'क्या हुआ?' बहुत ही संकोच के साथ कुंठित स्वर में जगतराम ने पूछा।

'अभी तो कोई जगह खाली नहीं है। लेकिन, हाँ, खाली होते ही सबसे पहले मुझे मिलेगी।'

सीढ़ियों से नीचे उतरते समय रजनी से मुलाकात हो गयी। लंच से लौट रही थी। उसके साथ एक नयी युवती और थी।

'अरे पुष्पा, आज अचानक इधर का रास्ता कैसे भूल पड़ी?' रजनी ने पुष्पा का हाथ पकड़ लिया। साथ के व्यक्ति के प्रति आँख से इशारा किया।

पुष्पा बोली, 'आ, तुझे मिलाऊँ। रजनी सिन्हा, हम एक साथ काम करते थे। ये जगतराम मेरे—'

'समझ गयी, आगे कहने की जरूरत नहीं।' अपने साथ की युवती से मिलाते हुए बोली, 'इन्हें तुम नहीं जानती पुष्पा! दमयन्ती साहनी, तुम्हारी जगह आयी हैं। और ये हैं श्रीमती पुष्पा वर्मा, इस दफ्तर में हमारे साथ ही काम करती थीं, यह तो सुन ही लिया। और ये—' लेकिन इसके पहले ही दमयन्ती और जगतराम ने परस्पर नमस्कार कर लिया था।

'ओ, आपलोग एक-दूसरे से परिचित हैं?'

ऐसा लगा, जैसे जगतराम का दम घुट रहा हो। 'हाँ, बहुत मामूली-सा परिचय है।' अस्पष्ट और रुँधे हुए स्वर में मानो जगतराम ने कहा।

'लेकिन हाँ, यह तो बता, कि इतने दिनों बाद एकाएक हमारी याद कैसे आयी?' पुष्पा का हाथ झकझोरते हुए रजनी ने कहा।

'नौकरी की तलाश में आयी थी। मि० तलवलकर ने कहा कि अभी कोई जगह खाली नहीं है। अतः वेटिंग लिस्ट में नाम दर्ज करा कर जा रही हूँ। ज़रा ख्याल रखना, भई।'

पुष्पा और जगतराम नीचे उतर आये।

'मि० जगतराम से आपका कहाँ परिचय हुआ?' ऊपर चढ़ते हुए रजनी ने दमयन्ती से पूछा।

'सिर्फ़ एक बार ही मुलाकात हुई थी, और वह भी हमारे मकान में।'

'शायद आपके कोई रिश्तेदार हैं?' रजनी ने पूछा।

'रिश्तेदार हैं नहीं, बल्कि होनेवाले थे।' दमयन्ती ने संक्षिप्त उत्तर दिया।

रजनी को यह उत्तर कुछ रहस्यमय-सा लगा। बोली, 'तो फिर रिश्तेदार बने क्यों नहीं?'

दमयन्ती के होठों पर एक विचित्र प्रकार की हँसी खेल गयी। 'मैं उस समय नौकरी जो करती थी।' दफ्तर में काम करनेवाली लड़की से शादी करने के लिए मि० जगतराम वर्मा क़तई तैयार न थे।'

'बीबी जी, साहब बुला रहे हैं।' मि० तलवलकर के बैरा ने आ कर कहा।

'अच्छा, जाती हूँ।' कहते हुए दमयन्ती ने डायरेक्टर के कमरे की ओर पैर बढ़ाये और रजनी की आँखें विस्मय से फटी की फटी रह गयीं।

सब निमंत्रित व्यक्ति एक-एक कर विदा हो गये।

आखिरी अतिथि को रास्ते तक पहुँचाकर जब हरिप्रसाद लौटा, तब ग्यारह बजे थे। देखा, कुर्सी पर बैठी हुई वीणा ऊंघ रही है। हरिप्रसाद दबे पैरों कुर्सी के पीछे खड़ा हो गया। चोटी में लगे हुए फूलों में से एक निकाल लिया।

चौंककर, आँखों को मलते हुए वीणा ने देखा। शर्माते हुए पूछा, 'अब फिर और कोई आया है क्या ?'

'अब और कोई नहीं आयेगा।' कुर्सी के हाथ पर बैठते हुए हरिप्रसाद ने जवाब दिया। 'तुम्हें शायद बहुत ज़ोर की नींद आ रही है ? '

वीणा ने एक बार जँभाई ली और कुर्सी की पीठ पर आलस्य से अपना सिर टेक दिया। 'नींद नहीं। शायद एक झपकी ले ली थी। अब फूलों के इन गहनों को उतार दूँ न ?'

'क्यों, तकलीफ़ हो रही है ? उतार दो। आज सारे दिन तुम्हें काफ़ी परेशान होना पड़ा, क्यों ?'

'परेशानी क्या ? मुझे तो इससे भी ज्यादा परेशान होने की आदत है। यहाँ तो सिर्फ़ कुर्सी पर ही बैठा रहना पड़ा। हास्पिटल में तो नाइट-ड्यूटी करनी पड़ती थी।' वीणा कुछ हँसी।

'यह भी क्या कम सज़ा है कि एक ही जगह और एक ही तरह से बैठे रहना ? सबको हाथ उठाकर नमस्कार करना, हँसकर खुश करना। बातें भी करनी पड़ें और साथ-साथ इसका भी ख्याल कि कोई बातूनी न समझ ले।'

'मैं पास हो गयी न ?' आग्रह और उत्सुकता से वीणा ने पूछा।

हरिप्रसाद और भी नज़दीक खिसककर बैठ गया। चोटी से निकाले हुए फूल को उसके गाल से छुआते हुए बोला—'हाँ, अब उठो।'

पलँग पर बिछे हुए बिस्तरे को देखकर एक बार वीणा सिहर उठी। सिरहाने की तरफ़ रजनी-गन्धा के फूलों का एक गुलदस्ता रखा हुआ था। चादर दूध जैसी सफ़ेद थी।

'क्या सोच रही हो ?' हरिप्रसाद ने पूछा।

'कुछ नहीं।' लज्जित वीणा और भी निकट आ गयी। जो कुछ सोच रही थी, वह बताया नहीं जा सकता।

बहुत तेज़ रोशनी में चमकता हुआ कमरा काफ़ी देर से ऑपरेशन-थियेटर जैसा लग रहा है। और रजनी-गन्धा की खुशबू 'डिसइनफेकटेंट लोशन' की बू से मिलती-जुलती है।

एक-एक करके उसने फूल के गहने उतार दिये। एक मामूली धोती और ब्लाउज़ लिये वीणा बाथरूम में घुसी। वहाँ से निकली, तो देखा कि आज जो सब चीज़ें उपहार में मिली हैं, उन्हें देख-देखकर हरिप्रसाद रख रहा है।

उपहार भी और कौन नये हैं। ज्यादातर किताबें ही हैं और वह भी कविता की। और है आइसक्रीम-सेट, पानदान। सब मामूली। इनके अलावा एक छोटे-से प्लास्टिक के झूले में गटापरचा के तीन गुड्डे रखे हुए हैं। यह भी किसी दोस्त ने ही दिये हैं। एक पिन से लगाये हुए कार्ड पर लिखा है—'शेप आव थिग्स टू कम!'

यह बहुत पुराना मज़ाक है। प्रायः सब शादियों में मित्र-मण्डली एक-न-एक ऐसा उपहार देती है, और बाद में खुद ही खूब खुश भी हो लेती है। शर्म से वधू के कपोल और कान लाल हो जाते हैं, सिर भी झुका लेती है।

लेकिन वीणा न तो ऐसी दुलहिन है और न छोटी-सी बच्ची ही है। उसने छै वर्ष तक अस्पताल में नौकरी की है। कम-से-कम उसने डेढ़-दो सौ डिलेवरी केस तो ज़रूर ही अटेंड किये होंगे। आज पच्चीस वर्ष की उम्र में उसके हाथ पीले हुए हैं। क्या इसलिए वह झूठी शर्म दिखायेगी?

'क्या देख रही हो?' हरिप्रसाद ने पूछा।

'कुछ नहीं। इन्हें उठाकर आलमारी में रख दूं।'

'कल सुबह रख देना, इतनी जल्दी क्या है!' हरिप्रसाद ने कहा।

एक भी सलवट न पड़ी हुई और दूध जैसी सफेद चादर की ओर देख कर वीणा फिर एक बार काँप उठी। एसेंस और क्लोरोफार्म की बू क्या एक-सी होती है? ताज्जुब है!

अब कमरे में धुंधली नीली रोशनी है। बहुत उत्साह से हरिप्रसाद के हाथ ने उसकी बाहुओं का स्पर्श किया था। वीणा को ऐसा लगा कि वह हाथ एकाएक मानो ढीला पड़ गया।

'क्या सोच रहे हो?'

'कुछ नहीं।'

'मैं जानती हूँ, तुम क्या सोच रहे हो।' वीणा के होंठों पर कुछ शरारत-भरी मुस्कान खेल गयी—'शायद पहली बार की बातें सोच रहे हो।'

हरिप्रसाद की दोनों आँखें चमक उठीं। बोला—'नहीं, नहीं। सोच रहा था कि बच्चा कहीं रोयेगा तो नहीं!'

'नहीं, रोयेगा नहीं'—वीणा ने कहा, 'फीडिंग बोतल में काफ़ी दूध भर दिया है। प्रभा उसे अपने पास ठीक से सुला लेगी।'

'वह बच जायगा?' वीणा के कन्धे पर अपना हाथ रखते हुए हरिप्रसाद ने कहा—'मैंने तो बिल्कुल आशा छोड़ दी थी।'

वीणा ज़रा हँसी। ये पुरुष गँवार होते हैं और बहुत जल्दी ही घबड़ा जाते हैं। कई साल तक अस्पताल में काम करने की वजह से उसे इसका अनुभव हो चुका है। वैसे तो तीसमार खाँ बने रहते हैं, लेकिन पत्नी की तबीयत जहाँ ज़रा खराब हुई नहीं कि इधर-उधर भागे-भागे नज़र आते हैं।

कई बार डिलेवरी केस के वक्त उसने देखा है—पति लोग बरामदे में इधर-उधर बेचैनी से टहलते रहते हैं, या जाड़े के दिनों में भी रात के वक्त विज़िटर्स-रूम में सिकुड़े-सिकुड़ाये बैठे रहेंगे। और कमरे में नर्स के घुसते ही आँखें बड़ी-बड़ी कर ऐसे देखते हैं, जैसे कोई खूनी फाँसी के हुक्म की बाट जोह रहा हो।

दिलासा देते हुए अगर नर्स कहती है—'आप घर जाइये, आज कुछ नहीं होगा', तो उन लोगों को दिलजमई नहीं होती। बहुत ही घबराई

हुई आवाज़ में पूछते हैं—'कोई डर की बात तो नहीं है? बहुत दर्द हो रहा है? वह क्या कर रही है?'

'सो रही है!' हँसकर नर्स कहती है, 'आप जाइये।'

हरिप्रसाद की आवाज़ से उसकी विचार-धारा टूटी। 'तुम बच्चे की खूब देखभाल रखना, वीणा! उसे यह कभी मालूम न हो कि उसकी माँ नहीं है।'

अपनी गर्दन टेढ़ीकर वीणा ने जवाब दिया—'हाँ, हाँ। बेफ़िक्र रहो, खूब देखभाल करूँगी। आज बच्चे का बार-बार इतना ख्याल आ रहा है कि शायद तुम्हें नींद नहीं आयगी।'

अब हरिप्रसाद ने वीणा को अपनी बाहुओं में बाँध लिया। कान के पास मुँह ले जाकर कहा—'आज तो यों भी नींद नहीं आयगी।'

लेकिन नींद आयी थी।

वीणा की जब आँखें खुलीं, तब अँधेरा था। आकाश में थोड़े-से तारे टिमटिमा रहे थे। उसने खिड़की से बाहर झाँककर देखा, रास्ते की रोशनी उस वक्त तक बुझी न थी।

वक्त जानने के लिए उसने लेटे-ही-लेटे नीली रोशनी का बटन दबाया। हरिप्रसाद का सिर तकिये से नीचे खिसक गया है। उसका एक हाथ अभी भी वीणा के हाथ पर है।

वीणा ज़रा सिहर उठी। उठकर बैठ गयी। एक ग्लास पानी पीया। अब तक जैसे सब कुछ धुंधला था और अब समझ में आ रहा है। 'महाराजा अस्पताल' की नर्स नववधू हो गयी है।

पानी पीकर वीणा ने बिछौने की तरफ़ देखा। चादर अब भी वैसे ही सफ़ेद है, लेकिन सिकुड़न पड़ गयी हैं। तकिये इधर-उधर हो रहे हैं। एक तकिया पैरों की तरफ़ है और दूसरे का आधा हिस्सा पलँग पर और आधा नीचे की तरफ़ लटक रहा है।

अब यह बिछौना आपरेशन-टेबल जैसा नहीं लग रहा है, आश्चर्य ! हाथ की कुहनी और गले में फूल की दो-चार पत्तियाँ लगी हुई हैं। सफ़ेद पत्तियाँ है। शायद वे रजनी-गन्धा की हैं। और इन लाल फूलों का क्या नाम है ?

आलमारी की तरफ़ नज़र पड़ते ही रात को मिले हुए उपहारों की की याद आ गयी। गटापरचा के तीन गुड्डे कैसे बैठे हुए हैं ? और उनके गले में मित्रों का लिखा हुआ वह कार्ड भी लटक रहा है —'थिंग्स टू कम !'

वीणा के भी क्या ऐसे ही तीन लड़के होंगे ? ऐसे ही गोल मटोल ? जब शादी हुई है, तो बच्चे होंगे ही। इसमें कौन-सी नयी बात है ?

अस्पताल की नर्स अगर पच्चीस वर्ष की उम्र में दुलहिन बन सकती है, सफ़ेद रूमाल की जगह सिर पर घूंघट हो सकता है, तो, तीन न सही, कम-से-कम एक-दो के लिए तो तैयार रहना ही चाहिए।

पति और पुत्र से ही तो यह गृहस्थी है। अनेक लोगों की वेतन-भुक्त सेविका होने के बजाय एक ही व्यक्ति की अवैतनिक सेविका बन जाना ही सिर्फ़ शादी का मतलब नहीं होता। घर होगा, गृहस्थी होगी और एक-दो बच्चे भी होंगे। नर्सिंग से मातृत्व की ओर वह क़दम रखेगी।

सूर्य की किरणें फैलने लगीं। हरिप्रसाद की भी आँखें खुल गयीं। उसने आँखें मलते हुए इधर-उधर देखा। उसकी ओर देखकर वीणा हँस दी।

खा-पीकर हरिप्रसाद बाहर चला गया। लेकिन वीणा का जैसे दिन नहीं कटता। छोटे बच्चे को नहला-धुलाकर सजा दिया। फिर दूध पिलाकर सुला दिया। अब ?

अब विश्राम। खाना ख़त्म होने के साथ-साथ ही अब उसे अस्पताल जाने के लिए दौड़ना नहीं होगा। बुखार का चार्ट नहीं देखना होगा,

रोगियों की उल्टी-सीधी बात नहीं सुननी पड़ेंगी। हरिप्रसाद चला गया है, अब शाम को ही लौटेगा। तब तक बिछौने पर लेटे-लेटे आराम किया जाय।

करीब तीन बजे वीणा उठी। कमरे की सब चीज़ों को ठीक से रख दिया जाय। झाड़ू से उसने बिछौना साफ़ किया। पंखे पर बहुत धूल जमी हुई थी, उसे भी झाड़ा-पोंछा। मेज़ पर बिखरे हुए कागज़ों की तह करके क़ायदे से रख दिया। मेज़ की दराज़ की चाबी लगी हुई है या नहीं, यह जानने के लिए उसने ज्योंही दराज़ खींचा कि वह निकल आया। उसमें भी काग़ज़-पत्र भरे हुए थे। शायद कुछ प्राइवेट काग़ज़ात हों, हाथ लगाये या नहीं, द्विधा में पड़ी थी। लेकिन काग़ज़ों के नीचे एक फोटो को देखकर वह अपना लोभ नहीं रोक सकी। देखा ही जाय, क्या है?

पुराना फोटो है। शायद तीन-चार साल पहले खिंचवाया गया होगा। अब भी फ्रेम का काला दाग़ मिटा नहीं है। हरिप्रसाद और—

और इस युवती को तो वह पहचानती है। अस्पताल में सात दिन तक इस शान्त, गंभीर और कोमल युवती का वेदना-विकृत चेहरा उसने देखा है। और उसके शरीर को बिल्कुल ठण्डा होते हुए भी देखा है।

हरिप्रसाद की पहली पत्नी—लीला। पहचाना हुआ चेहरा है, तो भी फिर से एक बार देखने के लिए वीणा झुकी। कोई खास विशेषता न होते हुए भी देखने-सुनने में सुन्दर ही थी। बड़ी-बड़ी आँखें न होते हुए भी उनमें काफ़ी चमक थी।

हरिप्रसाद क्या लीला से प्रेम करता था? करता ही था। जब लीला अस्पताल में थी, तब हरिप्रसाद ने कैसी दौड़-धूप की थी! आफिस जाने के बजाय दोपहर का वक्त भी उसने विजिटर्स-रूम में ही बिताया है। हर घण्टे बाद टेलीफोन कर परेशान कर दिया है।

और जिस रोज सब कुछ खत्म हो गया, उस दिन हरिप्रसाद कैसा पीला पड़ गया था—वीणा को आज भी याद है। बहुत देर तक तो ललाट पर हाथ रखे ऐसे बैठा रहा, जैसे उसमें जान ही न हो। फिर अपने आँसू रोकने के लिए उसने आँखों पर रूमाल लगा लिया।

'भाभी, मैं आऊँ?'

चकित होकर वीणा ने घूमकर देखा। बोली—'आओ प्रभा!'

बच्चे को गोद में लिये प्रभा कमरे में आयी। हरिप्रसाद की मौसेरी बहन है, वीणा की ही हम-उम्र है। शादी हुए सात-आठ साल हो गये हैं। इस बीच ही पूरी गृहस्थिन बन गयी है और शरीर भी चौड़ने लगा है।

वीणा के कन्धे पर झुककर प्रभा ने पूछा—'भाभी, क्या देख रही हो? ओ, यह भैया और पहली भाभी का फोटो है। शादी के बाद ही नैनीताल में खिचवाया था।'

'नैनीताल?' वीणा ने पूछा—'शादी के बाद ये दोनों शायद नैनीताल गये थे?'

'हाँ। वहाँ बीस-पच्चीस दिन रहे थे। भैया ने एक महीने की छुट्टी ली थी। हानीमून, नहीं जानतीं?'

वीणा ज़रा हँसी। बोली—'पहली बार तो एक महीने की छुट्टी ली थी और इस बार शादी के दूसरे दिन ही आफिस चल दिये! क्यों बीबीजी, महीने-भर की न सही, तो क्या दो-चार दिन की भी छुट्टी नहीं ले सकते थे?'

'वाह रे'—प्रभा ने कहा—'तब भैया की उम्र भी कम थी और फिर पहली शादी ठहरी।'

'बीबीजी, माना कि तुम्हारे भैया की यह पहली शादी नहीं है, लेकिन मेरी तो पहली ही है।' वीणा ने धीरे से कहा।

मन में जो थोड़ी-सी उदासी छा गयी थी, वह शाम को दूर हो गयी। प्रभा आज शाम को चली जायगी। उसकी अपनी गृहस्थी है। हरिप्रसाद दफ्तर से आ चुका था। बच्चा? बच्चे का क्या होगा?

'बच्चे को तुम अपने साथ ही ले जाओ', हरिप्रसाद ने कहा। यह सुनकर प्रभा बहुत खुश हुई। वहाँ और भी चार-पाँच बच्चे हैं। इसलिए, वहाँ बच्चे की देखभाल में कोई कमी नहीं होगी।

पीछे खड़ी हुई वीणा भाई-बहिन की यह बातचीत सुन रही थी। आगे बढ़कर उसने बच्चे को अपनी गोद में ले लिया। शान्त स्वर में कहा—'नहीं बीबीजी, यह नहीं होगा। बच्चा यहीं रहेगा। मैं ही उसका पालन-पोषण करूँगी। मैं भी तो उसकी माँ हूँ।'

प्रभा के जाते ही हरिप्रसाद ने वीणा के दोनों हाथ पकड़कर पूछा—'वाकई, तुम कर सकोगी?'

वीणा ने अपने हाथ नहीं छुड़ाये, सिर्फ पूछा—'क्या कर सकूंगी?'

'यही, बच्चे का पालन-पोषण?'

'क्यों नहीं। तुम क्या समझते हो कि सौतेली माँ होने की वजह से उसे दुःख दूंगी?'

भौंचक्का और खुश हो हरिप्रसाद ने कहा—'नहीं, यह बात नहीं। मैं जानता हूँ कि तुम ज़रूर कर सकोगी। तुम्हारे ऐसे संकीर्ण विचार नहीं हैं। तो फिर किरण को भी ले आऊँ?'

हरिप्रसाद की पहली पत्नी की ही लड़की है यह किरण। शादी से पहले उसने किरण को उसकी ननिहाल भेज दिया था। वीणा ने जवाब दिया—'हाँ, लाओगे क्यों नहीं? वह क्या हमेशा ही मामा के यहाँ पड़ी रहेगी?'

पलँग के पास एक छोटी-सी खाट और बिछायी गयी। उस पर छोटा-सा बिछौना बिछा। उसके ऊपर आयल क्लाथ। वहाँ छोटा बच्चा सोयेगा।

प्रभा को पहुँचाने हरिप्रसाद गया, और छोटे बच्चे को लोरियाँ सुनाकर वीणा सुलाने लगी। बिछौने पर बच्चा नहीं सोना चाहता, इसलिए अपनी गोद में सुलाया। इस बच्चे के जरिये ही उसका हरिप्रसाद से घनिष्ट परिचय हुआ।

लीला की मृत्यु के बाद एक दिन हरिप्रसाद हास्पिटल गया था। रूखे-बिखरे बाल, आँखों में फीकापन और चेहरे पर मुर्दनी। वीणा को अच्छी तरह याद है कि उसे देखते ही वह खड़ा हो गया था और बोला—'उस वक्त मेरा दिमाग ऐसा खराब हो गया था कि आपके यहाँ का पूरा-पूरा हिसाब चुकता नहीं कर सका। दाइयों और दरवान को ये रुपये बाँट दीजिएगा, और—'

'और क्या ?'

हरिप्रसाद जैसे कुछ संकोच में पड़ गया। फिर बोला—'आपने हमारे···यानी उनके लिए बहुत कुछ किया था...अगर आप कुछ ख्याल न करें तो···'

यह कहते-कहते हरिप्रसाद ने उसकी हथेली पर दस-दस के दो नोट रख दिये थे। वीणा कुछ चौंक तो ज़रूर गयी भी थी, पर रुपये लौटाने के लिए हाथ नहीं बढ़ा।

कुछ क्षण तक दोनों ही बिल्कुल चुपचाप खड़े रहे। थोड़ी देर बाद वीणा ने पूछा था—'छोटा बच्चा कैसा है ?'

'जिन्दा है।' हरिप्रसाद ने जवाब दिया था, 'यह क्या कम है कि वह अभी तक जिन्दा है, नहीं तो आम तौर पर ऐसी हालत में इतने छोटे बच्चे का जिन्दा रहना मुश्किल हो जाता है। एक धाय रखी है, पर उसपर पूरा भरोसा तो नहीं किया जा सकता। अगर एक अच्छी ट्रेंड नर्स मिल जाती तो···' यह कहते हुए हरिप्रसाद एक क्षण के लिए रुक गया था। फिर पूछा था—'क्या आपकी नज़रों में कोई ऐसी नर्स है ?'

हरिप्रसाद न किसी दूसरी नर्स के लिए कहा तो जरूर था, पर उसके चेहरे के भाव देखकर वीणा को यह समझते देर न लगी कि कोई दूसरी नर्स नहीं चाहिए, चाहिऐ वीणा ही। लीला जब अस्पताल में थी, तब वीणा से उसकी काफी घनिष्ठता हो गयी थी और दोनों सहेलियाँ बन गयी थीं। इसलिए वीणा के जाने पर हरिप्रसाद जितना निश्चिन्त होगा, उतना और किसी दूसरी नर्स के जाने पर नहीं होगा।

'मैं अगर आ जाया करूँ, तो आपको सहूलियत होगी?' वीणा ने सीधा प्रश्न किया।

'आप—आप आयेंगी?' हरिप्रसाद की दोनों आँखें चमक उठीं—'तब तो फिर बहुत अच्छा होगा।'

'बहुत अच्छा। मैं बीच-बीच में आ जाया करूँगी। लेकिन ज्यादा वक्त तो नहीं दे सकती, इसलिए अभी दाई को मत निकालियेगा।'

हरिप्रसाद अपना पता देकर चला गया।

पहली बार जिस दिन वीणा इस मकान में आयी थी, तब वह यह विश्वास नहीं कर सकी थी कि इस मकान में भी कोई आदमी रह सकता है। चारों ओर धूल-धक्कड़ और कूड़े-कर्कट का ढेर लगा हुआ था। कहीं जूठे बर्त्तन पड़े थे और कहीं गीले कपड़े-लत्ते। एक खाट के नीचे मैले कपड़े बिखरे पड़े थे। रसोई में स्टोव जलने की आवाज़ आ रही थी। उसने झाँककर देखा, हरिप्रसाद खाना बना रहा है और पास ही एक पट्टे पर उसकी लड़की किरण बैठी हुई है। सारी रसोई में चने की दाल बिखरी हुई है।

'लड़की की अँगुली कैसे कटी?' पट्टी बँधी हुई अँगुली की तरफ देख कर वीणा ने पूछा।

'सब्जी बनाते वक्त।' हरिप्रसाद की दोनों आँखें चमक रही थीं।

'आप भी बहुत अक्लमन्द हैं! चार साल की बच्ची से सब्जी कटवाते हैं?'

हरिप्रसाद ज़रा हँसा—'क्या करूँ, मैं उस वक्त दाल में मसाला छोड़ रहा था। यह देखिये, मेरा पैर जल गया है!' यह कहते हुए उसने अपना एक पैर आगे बढ़ाकर बहुत बड़ा फफोला वीणा को दिखाया।

'आप स्वयं खाना क्यों बनाते हैं? किसी होटल में इन्तजाम नहीं कर सकते? न हो, तो एक रसोइया या मिसरानी ही रख लीजिए।' वीणा ने सैकड़ों प्रश्न किये थे, बहुत सलाहें दीं।—'या आपका कोई ऐसा सगा-सम्बन्धी नहीं है, जो यहाँ आकर देख-भाल कर सके?'

'कोई भी नहीं है। अपना घर छोड़कर मेरे यहाँ कौन आयेगा? और होटल? उसके लिए तो बहुत पैसे चाहिए। मिलते तो मुझे सिर्फ दो सौ ही हैं। दाई की तनख्वाह, होटल का खर्चा, यह सब आयेगा कहाँ से? आपको भी तो'—हरिप्रसाद ने माथे का पसीना पोंछते हुए कहा था—'कुछ-न-कुछ तो देना ही होगा।'

दोपहर को जब हरिप्रसाद चला गया, तो वीणा ने मकान की सफाई में हाथ लगाया। छोटा बच्चा भी शान्त है, ज्यादा रोता या चीखता-चिल्लाता नहीं है। खाट के नीचे से मैले और फटे कपड़े निकाले। कागज पर लिखकर धोबी के यहाँ भेजने की सोचने लगी। उसके पीछे-पीछे हरिप्रसाद की लड़की आश्चर्य और चकित हो घूम रही थी।

'तुम्हारा क्या नाम है, मुन्नी?'

'किरण!' लड़की ने जवाब दिया।

'अरे वाह, बहुत अच्छा नाम है।'

'थूब अत्था नाम है।'

कुछ रुककर फिर पूछा—'और तुम्हारे छोटे भैये का क्या नाम है?'

'कैलाश!' वीणा को दोनों नाम बहुत पसन्द आये। किरण का भाई कैलाश!

प्रायः तीन महीने तक वीणा ने वेतन लेकर हरिप्रसाद के यहाँ नर्स का काम किया। सिर्फ पैंतीस रुपया महीना मिलता था। इतने

रुपयों से कहीं ज्यादा वह काम करती थी। किरण को अ-आ पढ़ाने से लेकर हरिप्रसाद की कमीज में बटन लगाने तक का सारा काम-काज वह करती थी। काम खत्म होने पर अगर हास्पिटल जाने की जल्दी न हुई, तो चाय पी ली और नहीं तो नहीं। बहुत-सी सलाह-मशविरा देती रहती, बातें भी खूब करती। दो मातृ-हीन शिशुओं के पालन-पोषण की सम्मिलित जिम्मेदारी की वजह से उन दोनों में एक विचित्र-सा सम्बन्ध हो गया।

आश्चर्य, तीन महीने से हर रोज दोनों की मुलाकात होती, लेकिन एक क्षण के लिए भी दोनों में से किसी के भी मन में यह ख्याल तक नहीं आया कि वे परस्पर प्रेम करने लगे हैं। हाँ, यह समझते देर न लगी कि वे एक दूसरे को पसन्द करते हैं।

किरण और कैलाश के सम्बन्ध में जब हरिप्रसाद परेशान था, ऐसे ही नाजुक मौके पर वीणा आयी। हरिप्रसाद की आँखों में चमक आ गयी थी।

'आप आ गयीं, तो मेरी मुसीबतें कितनी कम हो गयी हैं।'

या—

'आज इतनी देर!'

लेकिन वीणा ने इन बातों को साधारण शिष्टता के अलावा और कुछ नहीं समझा। और कुछ समझती भी कैसे, क्योंकि 'और कुछ' के बारे में वीणा का कुछ ज्यादा ज्ञान भी न था।

बहुत दूर के एक रिश्तेदार के यहाँ पल-पुसकर वह बड़ी हुई थी। जब वह बड़ी हुई, तो इसी शर्म से कि वह बड़ी हो गयी है, लोगों की नज़रों से बच-बचकर रहती थी। विधाता ने उसे बहुत सुन्दर भी नहीं बनाया था। इसलिए विवाह के उम्मीदवार भी ज्यादा न थे।

इस बीच उसने नर्सिंग का कोर्स लिया और पास हो गयी। पास होते ही किस्मत से नौकरी भी लग गयी। अठारह से पच्चीस, ये

सात-आठ साल एक ही तरह से कट गये—ऑपरेशन-टेबिल के पास नकाब पहने खड़ा रहना ; घायल की आहें सुनना और नवजातक की क्रन्दन-ध्वनि। 'डिसइनफेकटेंट लोशन' की बू के अलावा रजनी-गन्धा की सुगन्ध उसकी नाक में कभी नहीं गयी।

इस यथार्थ और कठिन नियमित दिनचर्या के बीच कभी-कभी वह बीमार भी पड़ी है। लेकिन मन को चंचल होने का सुयोग्य ही नहीं मिला। दो-चार छोकड़े डाक्टरों के आँखों के इशारे से वह जल-भुन गयी है। कुछ शौकीन और शरीफ़ बदमाशों ने टेलीफोन गाइड में नम्बर देखकर आधी रात को फोन पर उसे तंग किया है। दो-चार पेशेवर लफंगे रात के वक्त मोटर में आये हैं और 'नर्सेज क्वार्टर' के आगे हार्न बजा कर चले गये हैं। यह सब सहन करने की आदत पड़ गयी है।

इसके अलावा शायद हरिप्रसाद ही ऐसा प्रथम व्यक्ति था, जिससे वीणा इतनी घनिष्ठता से मिली।

अगर रोज की मुलाकात का नाम ही घनिष्ठता है, तो इसका और भी कुछ दूसरा अर्थ हो सकता है, इसका और भी कुछ मतलब लगाया जा सकता है—यह बात उसे उस दिन मालूम पड़ी, जिस दिन डा० त्रिवेदी ने बुलाकर पूछा।

क्या यह सच है कि वीणा का हरिप्रसाद के यहाँ आना-जाना है? डा० त्रिवेदी ने जानना चाहा।

वीणा पहले तो कुछ समझ न सकी, लेकिन झूठ भी नहीं बोल सकी।

'क्यों जाती हो?'

'उनके छोटे-छोटे बच्चों की देख-भाल करने।'

'इसके लिए तनख्वाह मिलती है?'

वीणा ने स्वीकार किया, वह वेतन लेती है।

'जानती हो, यह अस्पताल के नियम के विरुद्ध है। यहाँके किसी भी होल-टाइम कर्मचारी को आऊट डोर प्रैक्टिस करने की आज्ञा नहीं है।

मैं चाहूँ, तो तुम्हें इसी बात पर बर्खास्त कर सकता हूँ। खैर, इस बार मैं सिर्फ वार्निंग दे रहा हूँ, तुम वहाँका काम छोड़ दो।'

शाम को चाय पीते-पीते वीणा ने हरिप्रसाद से कहा—'आज मेरा आखिरी दिन है।'

'आखिरी दिन है? क्यों?' हरिप्रसाद ने पूछा। उसके काँपते हुए हाथ में हिलते हुए प्याले को देखकर वीणा भी जैसे काँप उठी। हरिप्रसाद को अस्पताल की सारी बातें बतानी पड़ीं।

'कल से,' वीणा ने धीरे-धीरे कहा, 'अब मैं नहीं आऊँगी।'

'कल से ही? अच्छा।' हरिप्रसाद उठकर खड़ा हो गया और फिर मेज़ की दराज़ से रुपये निकालकर बोला—'आपके जो रुपये बाकी हैं, लेती जाइये।'

वीणा ने हाथ पसार कर रुपये ले लिये। इस बार उसका हाथ काँप गया।

'गिन लीजिए।' हरिप्रसाद ने रूखी आवाज में कहा—'देख लीजिए, आजकल जाली नोट अक्सर आ जाते हैं।'

सिर्फ हाथ ही नहीं, इस बार वीणा की आँखों की दोनों पलकें भी हिल उठीं। आँसू आ ही गये। मेज़ पर उसने अपना सिर टेक दिया।

और उस वक्त ही सब कुछ जाहिर हो गया।

पाँच मिनट बाद हरिप्रसाद ने कहा—'वीणा, तुम अस्पताल की नौकरी छोड़ दो।'

वीणा ने जवाब देने की कोशिश की, लेकिन मुँह से आवाज न निकली। अपनी अश्रु-भरी आँखों को उसने ऊपर उठाया और हरिप्रसाद की ओर एकटक देखती रही। हास्पिटल की नौकरी छोड़ देगी।

तीन दिन बाद किरण आयी। वीणा को वह पहचानती थी, लेकिन वधू-वेश में नहीं। उसे संदिग्ध नज़रों से देखती हुई वह दूर खड़ी रही।

वीणा ने उसे पास बुलाया। बोली—'क्यों किरण, मुझे नहीं पहचानती? अब तुम लोगों के पास ही हमेशा रहूँगी। मैं तुम लोगों की माँ हूँ। नयी माँ।

किरण वैसे ही खड़ी रही। बोली—'तुम माँ नहीं हो।'

पर किरण को अपना बना लेने में वीणा को ज्यादा वक्त नहीं लगा। किरण के एक गुड्डे की शादी का सारा भार जिस दिन वीणा ने ले लिया—बस, उस दिन से ही वह वीणा को अपना समझने लगी और इतना अधिक अपना समझने लगी कि हरिप्रसाद को भी आश्चर्य हुआ।

पहले अस्पताल की ड्यूटी के बाद यहाँ आकर सब काम करने पड़ते थे, लेकिन उससे मन नहीं भरता था। सब कुछ जैसे अधूरा-अधूरा रह जाता था। अब सारा भार उसपर है। सब्जी इत्यादि लाने के लिए हिसाब से पैसे देती है। बिजली फ़िजूल नहीं जलती रहती है। अगर घर में ही धुलने लायक कपड़े होते हैं, तो धोबी के यहाँ नहीं भेजे जाते।

अब सारे घर में व्यवस्था है। सफ़ाई-सुथराई है।

हरिप्रसाद यह सब ग़ौर करता है। तब दाढ़ी बनाते-बनाते छोटे बच्चे को सँभालना पड़ता था, रसोई के धुएँ में दो घण्टा परेशान होकर और आधी कच्ची-पक्की दाल-रोटी ज़ल्दी-ज़ल्दी खाकर आफिस भागना पड़ता था—दुःख-भरे सपने की तरह वे दिन भी अब बीत चुके हैं।

अब तो इतनी सुविधा है कि अगर छोटे बच्चे को मामूली-सी कोई तकलीफ़ हो, तो डाक्टर के यहाँ दौड़ना नहीं पड़ता। घर में ही ट्रेंड नर्स मौजूद है।

जब कमरे में आँचल लपेटे वीणा रसोई में काम करती रहती है, तो मुग्ध हो हरिप्रसाद विस्मय से देखता है। बर्तन-भाँड़े माँजने के लिए एक महरी है और बाकी सारा काम वीणा खुद करती है। आग की गर्मी उसे नहीं लगती, ठण्डे पानी से सर्दी-जुकाम नहीं होता—यह औरत कैसी स्वस्थ और समर्थ है!

लीला भी शान्त थी। लेकिन गृहस्थी चलाने में इतनी चतुर न थी। जो कुछ भी मिलता था, सब उड़ा देने में ही उसे मज़ा आता था। सर्दियों में तीसों दिन बीमार रहती थी। हर महीने दवाओं का बिल भी कम न होता था। धोबी के यहाँ गट्ठर-के-गट्ठर कपड़े धुलने जाते थे।

और सच तो यह है कि उन दिनों दो सौ रुपयों में पूरा पड़ता ही न था। हर महीने बीस-पच्चीस रुपये उधार हो ही जाते थे। और कर्ज की यह रकम प्रति माह बढ़ती ही जाती थी।

जब लीला अस्पताल में थी, उस समय हरिप्रसाद ने अपने आफिस के मित्रों से कुछ कर्ज लिया था। बहुत जल्दी ही 'इनक्रीमेंट' मिलने की आशा थी, लेकिन इसमें सन्देह था कि उससे भी पूरा कर्ज अदा हो पायेगा या नहीं।

हरिप्रसाद जानता है, वीणा सब ठीक कर देगी। गृहस्थी के खर्च से ही कुछ रुपये बचाकर उसने इन दो महीनों में ही खिड़कियों के लिए दो नये पर्दे खरीद लिये हैं। और किरण की बीमारी के वक्त तो वीणा ने सारा दिन और सारी रात उसके सिरहाने बैठे ही काट दी है। अगर लीला के ज़माने में ऐसा हुआ होता, तो डाक्टर की फीस और दवा-दारू में ही तीस-चालीस रुपये स्वाहा हो गये होते।

दो सौ रुपया वेतन है, एक सुगृहिणी और एक लड़का तथा एक लड़की। जीवन की प्रयोजनीय आवश्यकताओं की पूर्त्ति हो ही जाती है। चार प्राणियों के परिवार का खर्च चल ही जाता है। और इससे ज्यादा संख्या न बढ़नी चाहिए, नहीं तो फिर खर्च नहीं चलेगा। हरिप्रसाद यही चाहता है।

एक दिन प्रभा मिलने आयी।

'वाह भाभी, तुमने तो सब चीज़ें बड़े करीने से सजा रखी हैं।'

उस वक्त छोटे बच्चे को गोद में लिये वीणा उसके काजल लगा रही थी। कुछ शर्माते हुए हँस दी।

'अब तो तुम पूरी घर-गृहस्थीवाली बन गयी हो? तुम रहती तो हास्पिटल में थी, यह सब कहाँ से सीखा?'

'सीखना नहीं पड़ता, अपने आप आ जाता है।'

'अच्छा भाभी, तुम्हारा चेहरा कुछ सूखा-सूखा-सा नजर आ रहा है, तबीयत ठीक नहीं है?'

प्रभा उसे बहुत ही तीक्ष्ण दृष्टि से देख रही है, यह ग़ौर कर वीणा कुछ सकुचा गयी। बोली, 'नहीं तो, तबीयत तो ठीक ही है।'

'ठीक कहाँ है? आँखों के नीचे कालिख, सूखे-सूखे गाल, सिर्फ गृहस्थी के काम-काज की वजह से ही तुम्हारी यह हालत नहीं हुई है? जरूर और भी कोई बात है, मेरी नज़रों से कुछ नहीं छिप सकता! भाभी! तुम्हें मेरी कसम, जो सच-सच न बताओ।'

उसका इशारा समझकर वीणा हँस पड़ी। बोली, 'नहीं भई, नहीं, जो-कुछ तुम सोच-समझ रही हो, वह बात नहीं है।'

प्रभा ने अचम्भे से देखा। इस बार साफ-साफ पूछा—'तुम सच कह रही हो कि तुम्हारे बच्चा नहीं होनेवाला है?'

'नहीं। तुम्हारा ख़्याल गलत है। और'—छोटे बच्चे को चूमते हुए वीणा ने कहा—'ये भी तो मेरे ही बच्चे हैं!'

'हाँ, हैं तो। पर तुम तो ऐसी बन रही हो, जैसे कुछ समझती ही नहीं। मैं तुमसे तुम्हारे अपने बच्चे के बारे में पूछ रही हूँ, भाभी! तुम्हारे कब होगा?"

'तुम्हारा—अपना?' प्रभा के चले जाने के बाद भी वीणा उस दिन इस बात को नहीं भूल सकी। हर रोज की तरह ही कमरे में झाड़-बुहारी दी, सूखे हुए कपड़ों की तह करके अलगनी पर टाँगा, छोटे बच्चे को दूध पिलाकर सुला दिया, लड़की का मुँह-हाथ धोकर पार्क में खेलने भेज

दिया। लेकिन प्रभा के वे शब्द नहीं भूल सकी। आश्चर्य यही था कि इतने दिनों से भूली हुई थी! चाहे कितना भी प्रेम क्यों न हो, पर य बच्चे उसके नहीं हैं।

इतने दिनों बाद ऐसा लग रहा है, जैसे सब कुछ पाकर भी कुछ कमी-सी क्यों खटकती थी। इन बच्चों को वह चाहे जितना भी प्यार क्यों न करे, लेकिन अपने खून से बनी हुई सन्तान के प्रति प्यार का रंग ही कुछ दूसरा होता है।

यहाँ आकर वीणा को सब कुछ ही मिला है—सुहाग का चिह्न सिंदूर, अच्छा पति और पूरा अधिकार। लेकिन न जाने कहाँ कुछ कमी रह गयी है। आलमारी में सजे हुए गटापरचा के तीन गुड्डों पर नज़र पड़ते ही वीणा ने उस ओर से अपनी आँखें हटा लीं। वहाँ से हट गयी।

बिछौने का चादर ठीक करते-करते वीणा बोली, 'आज प्रभा आयी थी।'

'आयी थी? क्या कह रही थी?'

'कहती क्या, खूब बातें बना गयी। कहती थी कि मेरा चेहरा सूख गया है।'

'यह कहा?' हरिप्रसाद ने वीणा को अपने पास खींचा। बोला—'प्रभा के आँखें नहीं हैं। शादी के बाद से तो तुम्हारा चेहरा और भी निखर गया है।'

वीणा ने बिजली बुझा दी। खिड़की से हल्की चाँदनी बिछौने पर पड़ रही थी। हरिप्रसाद की बाँहों पर सिर रखकर दबी आवाज़ में बोली, 'खाक चेहरा निखर गया है। जानते हो, प्रभा क्या कह रही थी?' और उसने हरिप्रसाद के कान के पास फुसफुसाते हुए कुछ कहा।

'उसने यह कहा!' हरिप्रसाद ज़रा हँसा—'छोटी उम्र में ही उसकी शादी हो गयी थी, कुछ पढ़ी-लिखी भी नहीं है। वह तो शादी का बस

एक ही मतलब समझती है। उससे कह क्यों नहीं दिया कि हमें बच्चा-बच्ची कुछ नहीं चाहिए।'

हरिप्रसाद की छाती में मुँह छिपाकर वीणा बोली—'चलो, मुझे यह कहते हुए जैसे शर्म नहीं आती?'

कुछ देर ठहरकर वीणा ने फिर धीरे से कहा—'और अगर अभी बच्चा नहीं हों रहा है, तो इसका यह मतलब नहीं कि भविष्य में कभी होगा ही नहीं।'

उसके बालों में धीरे-धीरे अँगुलियाँ चलाते हुए हरिप्रसाद ने जवाब दिया—'दो तो हैं। उन्हींकी देख-भाल ठीक से नहीं होती। इतनी थोड़ी-सी आमदनी में तुम और भी बच्चा चाहती हो?'

हरिप्रसाद की बाँहों में आबद्ध वीणा का शरीर थर-थर काँपने लगा। अपना मुँह उसके कान के पास ले जाकर फिसफिस करती हुई बोली—'लेकिन तुम्हारी तनख्वाह बराबर इतनी ही थोड़े ही रहेगी, बढ़ेगी भी तो? ये दोनों बच्चे भी बड़े हो जायेंगे, तो?'

अपना सिर हटाकर हरिप्रसाद ने कहा—'लेकिन तब इनकी पढ़ाई लिखाई इत्यादि का खर्च भी तो बढ़ेगा। दो बहुत काफी हैं। और ज्यादा की क्या जरूरत है, वीणा?'

अचानक जैसे वीणा को क्या हो गया! हरिप्रसाद की बाहुओं से अपने को छुड़ाकर बैठ गयी और कुछ क्षण बाद बिछौने में एक तरफ सरक गयी।—'इसलिए मेरे एक भी नहीं होना चाहिए? एक भी नहीं होगा, एक भी नहीं?'

हरिप्रसाद की समझ में पहले तो कुछ नहीं आया। इसलिए कुछ देर तक वह अचम्भे से देखता रहा। एक-एक बच्चे को पालने-पोसने, बड़ा करने, खाने, पहनाने और पढ़ाने-लिखाने की जिम्मेदारी कितनी ज्यादा है, लीला यह नहीं जानती थी। वह लापरवाह और अल्हड़ थी तथा कुछ जानना चाहती भी नहीं थी। पहली शादी, लड़कपन की उम्र

—उस वक्त हरिप्रसाद को भी परिणाम की विशेष परवाह नहीं थी। पर अब उसका फल भोग रहा है।

बोला—'मुझे आशा थी कि तुम सब समझोगी वीणा। किरण और कैलाश, ये दोनों भी तो तुम्हारे ही हैं!'

'नहीं, नहीं, नहीं।' बहुत ही तेज आवाज में गुस्से से भरकर वीणा ने कहा। ऐसा लगा, जैसे चिल्ला रही हो।

इस तेज आवाज से कैलाश की नींद खुल गयी। वह जोर से रोने लगा। वीणा ने उसे गोद में उठा लिया। शान्त करने के लिए उसके मुँह में चुसनी ठूस दी।

आधे अन्धकार में वीणा के अस्पष्ट चेहरे का सिर्फ एक हिस्सा दिखाई दे रहा है। चकित होकर हरिप्रसाद ने पूछा—'तुम्हें क्या हुआ, वीणा? क्या सोच रही हो?'

वीणा तब तक शान्त हो चुकी थी। छोटे बच्चे को सुलाने के लिए कमरे में टहलती हुई लोरियाँ गुनगुना रही थी। बहुत ही भर्रायी और भरी हुई जैसी आवाज में बोली, 'कुछ नहीं, सोचती हूँ, मैं नर्स की नर्स ही रह गयी।'

हरिप्रसाद कुछ कहने ही वाला था, कि वीणा ने होंठों पर अँगुली रखकर चुप रहने का इशारा किया—'चुप! बच्चा फिर जाग जायेगा।'

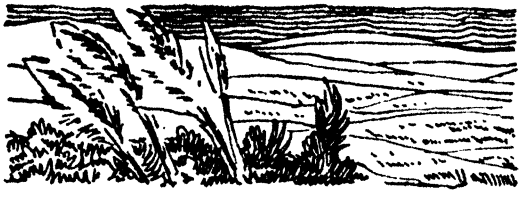

काफी सोच-विचार के बाद नाट्यकार ने यही तय किया कि अन्तिम अङ्क में वे अपनी नायिका का अन्त कर देंगे। इस सोच-विचार में उन्होंने कई दिन काट दिये। अन्त में इसी निष्कर्ष पर पहुँचे कि नायिका की हत्या होने पर ही नाटक के करुण रस से दर्शक अभिभूत हो जाएँगे। अतः अन्तिम

अङ्क में उन्होंने माधुरी को मार डाला। पर यहाँ यवनिका पतन न हुई।

रंगमंच पर दर्शकों ने नाटक को बहुत पसन्द किया। खूब तालियाँ बजीं। नये नाट्यकार की प्रथम सफलता ऐसी ही होती है। अख-बारों में भी इसकी कुछ चर्चा हुई। उनके मतानुसार इस नाटक की यह अद्‌भुत परिणति नाट्य साहित्य में अनोखी थी।

अब नाट्यकार ने नए नाटक की नूतनतर परिणति कर जनता को आकर्षित करने की ठानी। पर उन्होंने अनुभव किया कि यह काम इतना आसान नहीं है। तो भी, नासमझ बनना उन्हें बड़ा अच्छा लगा। मन-ही-मन वह जी-जान से कोशिश करने लगे। इस समय उनके मन की अवस्था बड़ी चंचल थी। पुराने घर में उनका जी नहीं लगता था। नया मकान खोजने लगे। और, एक नया नाटक भी शुरू हो गया—जिस दिन वे शीराजी के पासवाले फ्लैट में आकर रहने लगे।

यह शीराज़ी अच्छी लड़की है। लेकिन हमेशा घर में ही रहना पसन्द करती है। उसका मन जैसे मरा हुआ है। उसे नाटक-वाटक देखने का शौक नहीं। इस नाटक के बारे में उसने सुना अवश्य था, लेकिन अन्त में नायिका को मार डाला है सिर्फ इसी कारण इतनी तारीफ़ हो रही है। क्यों? यह उसकी समझ में नहीं आता है।

शीराज़ी सोचती है, मनुष्य की विचित्र रुचि होती है। कहानी सुनने के बाद से ही नाटक और नाट्यकार पर वह जली बैठी है। फिर जब से उसे मालूम हुआ कि उसके बगलवाले फ्लैट में ही सशरीर उस नाट्यकार का आविर्भाव हुआ है, तब तो उसका क्रोध जैसे और बढ़ गया। हमेशा घर में घुसे रहनेवाले और मुँह छिपानेवाले व्यक्ति को समझना कुछ कठिन है। शीराज़ी के मनोभावों को समझना मुश्किल है।

लुक-छिपकर वह नाट्यकार का चलना-फिरना देखती है। उसे बहुत भद्दा और अजीब-सा लगता है। जाने क्यों, उसे कुछ घृणा भी होती है। इस द्वेष और क्रोध का कारण क्या है, शीराज़ी स्वयं नहीं जानती। इस भले आदमी में क्या बुराई है, यह बताने में भी उसे चिढ़ है। सच तो यह है कि वह इस व्यक्ति को क़तई पसन्द नहीं करती।

और, यह आदमी भी बहुत उदासीन है। वह हमेशा खोया-खोया-सा रहता है। अपने में ही मस्त रहता है। उसके साथ एक नौकर भी है, बहुत ही आज्ञाकारी और वफ़ादार। गम्भीर आवाज़ में कभी नाट्यकार बड़े आदर और प्यार से पुकारते हैं, 'सोमनाथ'। झाड़न से प्लेट पोंछते-पोंछते नौकर सामने हाज़िर होता है। क्या कहता है, सुनाई नहीं देता। काफ़ी देर बाद अपना मुंह ऊपर उठाते हुए नाटककार उसकी तरफ़ देखते हैं। कहते हैं, "आ गया? क्यों, क्या चाहिए?" शीराज़ी के कानों में अस्पष्ट आवाज़ आती है। वह जल-भुन जाती है! यह क्या बेहूदगी?

खिड़की पर बैठे रहने का शीराज़ी को व्यसन है। दुमंज़िले की खिड़की पर। यहाँ से सड़क की झलक तो बहुत थोड़ी-सी ही मिलती है, लेकिन नाट्यकार का पूरा कमरा दिखाई देता है। हाँ, नाट्यकार उसे नहीं देख पाते। इस ओर शीराजी सचेत है। अगर वह किसी कारण ज़रा इधर-उधर नज़र घुमाते भी हैं तो शीराज़ी चट से चिकन का पर्दा खींच देती है। इससे भीतरवाली की दृष्टि तो बाहर जाती है, लेकिन बाहरवाले की दृष्टि भीतर तक नहीं पहुँचती; चिकन के बाहर ही अटक जाती है।

कुर्सी पर बैठ कर शीराज़ी ने ऊन की ब्लाउज़ बुनना शुरू किया। यह उसका उपलक्ष्य है या अवलम्बन। असल में बाहर की तरफ़ ही उसकी नज़र ज्यादा रहती है। रोज का ही किस्सा है। प्रायः आधी रात तक शीराज़ी जागती रहती है। उसकी यह आदत कोई नई नहीं

है, काफ़ी पुरानी है। जिनका मन मरा हुआ होता है, उनके लिए रात ही ज्यादा उपभोग्य होती है, साधारणतः।

नाट्यकार के दरवाज़े पर रात को पर्दा पड़ जाता है। खिड़की खुली रहती है। एक कोने में कुर्सी और मेज़ है। उस पर बहुत सारी किताबें बेतरतीबी से रखी हुई हैं। किसी भी चीज़ को ठीक ढंग से रखने की उन्हें शायद फ़ुरसत ही नहीं है, या ज़रूरत नहीं समझते। नौकर भी कैसा बुद्धू और आलसी है। जितना उससे कहा जाए उतना ही काम करता है। अपने मन से उसे कुछ नहीं सूझता।

आधी रात तक शीराज़ी देखती रहती है, नाट्यकार के पर्दे पर एक छाया धीरे-धीरे प्रकट होती है और अदृश्य हो जाती है। फिर प्रकट होती है, फिर ग़ायब होती है। हवा से जब पर्दा उड़ता है, तब हाथ में पैड लिए हुए नाट्यकार चहलकदमी करते हुए नज़र आते हैं। एक ढीला-ढाला लम्बा चोग़ा पहने हुए हैं, यह किस देश का फ़ैशन है। शीराज़ी को यह बुरा लगता है। नाटक लिखने के लिए नट बनना ही होगा, यह ज़रूरी है? और फिर, नाटक भी ऐसा, जिसके सिर-पैर का कोई ठिकाना नहीं। एक युवती की हत्या कर दी! ओहो, कैसी पैथेटिक परिणति है।

टन-टन। रात के नौ बजे हैं। नाट्यकार मेज़ के सामने बैठे हैं। मानों उनकी कथा का स्रोत आ गया है। शीराज़ी ऊँघती है। छत पर आँखें गड़ाए वह सोच रहे हैं। उसे क्या ज़रूरत पड़ी, जो जागे; झट से बिजली का स्वीच दबाकर वह सो जाती है।

शीराज़ी अकेली है। क्यों अकेली है, यह आप न पूछें। फिर भी, कुछ कैफ़ियत देनी है। देखने-सुनने में अच्छी होने पर भी वह मधुर-भाषी नहीं है। उसकी कटु और उग्र वक्रोक्तियों के कारण संगी-साथी उससे दूर-दूर रहते हैं। लेकिन जिनकी बातें उग्र होती हैं, उनका हृदय

कोमल होता है। लेकिन लोग यह नहीं समझते। सिर्फ बाहरी रूप से ही किसी को नहीं समझा जा सकता। लोगों ने उसके भीतरी रूप को नहीं पहचाना है। उन्होंने धोखा खाया है और शीराज़ी को धोखा दिया है।

घड़ी की टिक-टिक सुनते उस रात को शीराज़ी सो गई। सुबह देर से आँखें खुलीं। खिड़की से झाँककर देखा कि नाटयकार की खिड़की और दरवाज़ा बन्द है। ओ! शीराज़ी जैसे बची! इतने दिनों बाद वे कमरे से बाहर निकले हैं! घर में घुसे रहनेवाले मनुष्यों को शीराज़ी बहुत नापसन्द करती है।

वह नीचे उतरी। नित्य-कर्म आदि से निवृत्त हो फिर ऊपर आ गई। खिड़की में बैठ गई। आज जैसे अनेक दिनों बाद वह मुक्त हुई है। उसकी गाने की इच्छा हुई। पर वह गाना नहीं जानती। नहीं जानती तो क्या हुआ, उसने गुनगुनाना शुरू किया। कल शाम को रेडियो में जो गाना सुना था वही। लेकिन फटे-बाँस जैसी आवाज़ निकलती है, खँखारने पर भी गला साफ़ नहीं होता। शीराज़ी स्वयं पर हँसी। पड़ोस की लड़की बड़ी चंचल है, हमेशा पतिको छेड़ती रहती है, टाई नहीं बाँधने देती। मज़ेदार युवती है। इस तरह दिल खोल कर वही हँस सकती है। शीराज़ी तो किसी भी दिन इस तरह नहीं हँस सकती! और, यह देखो! अब कटोरी बजा-बजाकर लड़के को दूध दे रही है और लोरी गा रही है? वाह, कैसे मज़े में हैं। शीराज़ी का हलका मन एकाएक भारी हो गया।

अख़बार अभी तक नहीं देखा है। शीराज़ी अख़बार ले आई। खटिया पर औंधे मुँह लेट कर पढ़ना शुरू किया। हिश, अब भी महा-समारोह के साथ? जैसे इस समारोह का अन्त नहीं होगा। इतने लोग जाते हैं, एक दिन वह भी चली जाए। नाटक देख आने में नुक़सान ही क्या है? चूल्हे में जाए नाटक, अखबार फेंक कर वह नीचे उतरी। उसे कितना काम है। चार मेज़-पोश काढ़ने हैं, सिर्फ़ दो हफ्ते में—ख़ैर!

माँ ने पूछा, "आज कालेज खुला हुआ है न ?"

"मालूम नहीं। लेकिन मैं नहीं जाऊँगी।"

"क्यों ?"

"यों ही, इच्छा नहीं है।"

जल्दी से वह फिर ऊपर आई। कलेंडर देखा, आज कौन-सा दिन है ? नहीं, अभी दो दिन की छुट्टी है। उसके बाहर जाने पर माँ खुश होती हैं। यह सच है। रात दिन कमरे में ही घुसे रहना उन्हें पसन्द नहीं। खुली हवा स्वास्थ्य के लिए जरूरी है। बाहर घूमना-फिरना चाहिए।

यह तो हुआ। लेकिन शीराज़ी ने सारी छुट्टियाँ यों ही आलस्य में बिता दीं। किताबों को छुआ तक नहीं। वज्राघात हुआ उस समय, जब माँ ने कालेज की याद दिलाई। ऊल, क्रोशिया और क्रॉचेट—समय नष्ट करने के मूल में ये ही चीज़े हैं।

शीराज़ी किताब लेकर बैठी।

आज उसने पर्दा उठा दिया और जी भर कर बाहर की हवा का उपभोग किया।

उसके हाथ में एक विदेशी नाटक है। इसमें तो कहीं भी किसी की हत्या नहीं की गई है। फिर भी, रस की कोई कमी नहीं है। यह काफ़ी मशहूर नाटक है। हत्या और आत्म-हत्या के उसने कई नाटक पढ़े हैं। लेकिन हत्या की ऐसी विचित्र कहानी उसने नहीं पढ़ी। एक लड़की की ज़बरदस्ती हत्या कर दी गई है! विचित्र! शीराज़ी ने नाट्यकार के बन्द दरवाज़े की ओर देखा। दरवाज़ा बन्द है। सोमनाथ भी संगति के असर से शायद नाट्यकार हो गया है। वह भी जान पड़ता है, कहीं बाहर गया है।

शाम के वक्त दरवाज़ा खुला और मुँह में पाइप दबाए नाट्यकार महोदय बरामदे में आ खड़े हुए। शीराज़ी उन्हें सिर से पैर तक अच्छी

तरह देखने लगी। ऊँह, सिर्फ़ नाम ही नाम है, चेहरे में कोई विशेषता या चमक कुछ भी नहीं है। यहाँ तक कि श्रद्धा-सम्मान पाने योग्य बिन्दु मात्र चिह्न भी नहीं है। लेकिन नाटक देखने की शीराज़ी की कुछ इच्छा अवश्य हुई। इच्छा नहीं, कौतूहल। जिसके बारे में इतना शोर मचा हुआ है, आखिर वह है क्या? क्यों न स्वयं ही देख जाए।

लेकिन उसे देखने नहीं जाना पड़ा। एक अप्रत्याशित संध्या को दो गीतों के बाद घोषित किया गया कि अब नाटक होगा। हाँ? शीराज़ी को बहुत हँसी आई। कहाँ, प्रोग्राम में तो उसने नहीं देखा। जल्दी-जल्दी उसने अख़बार खोला, रेडियो प्रोग्राम देखा। वाक़ई, नाट्यकार का वही नाटक प्रसारित किया जाएगा। काठ की कुर्सी से उठ कर शीराज़ी ने आरामकुर्सी को खिड़की के नज़दीक खींचा, बिजली बुझा दी और मज़े में उस पर बैठ गई।

नाट्यकार रेलिंग के सहारे आ कर खड़े हो गए। शायद वे नाटक सुनना चाहते थे। लेकिन उनके पास रेडियो नहीं है। शीराज़ी के रेडियो पर ही निर्भर करना पड़ा। शीराजी ने खिड़की खोल दी और पर्दा हटा दिया। अँधेरे कमरे में कुर्सी पर लेटे-लेटे वह नाटक सुनने लगी।

नायक-नायिका। दोनों बचपन के साथी हैं। यौवन आया और उसका वाहन प्रेम। प्रेम को लेकर हुआ द्वन्द्व। कौन ज्यादा प्रेम करता है, कितना प्रेम करता है? इस का परिमाण नापने के लिए कलह होने लगा। कलह नहीं, तर्क-वितर्क। नहीं, तर्क-वितर्क भी नहीं कहा जा सकता। उपयुक्त शब्द शीराज़ी को याद नही आ रहे हैं। कुछ भी हो, दोनों में प्रेम की इस प्रतियोगिता के शुरू होने के साथ-साथ तीन अंक खत्म हो गए।

बिलकुल मामूली प्लाट और प्राणहीन संवाद। शीराज़ी को उसमें कुछ नवीनता या विशेषता नज़र न आई। वह कानों से नाटक सुन रही

है और आँखें नाट्यकार पर गड़ी हुई हैं। उफ़, बेचारा! देखो न, कितने विश्वास और संतोष के साथ बरामदे में चहलक़दमी कर रहा है! अपनी चीज़ के प्रति मनुष्य अन्धा हो जाता है। नहीं तो इस नाटक के लिए नाट्यकार को इतना अधिक चंचल होने की क्या ज़रूरत थी।?

इसके बाद अन्तिम अंक शुरू हुआ। हत्या का दृश्य सुनने के लिए शीराज़ी अधीर आग्रह से कान खड़े करके सीधी बैठ गई। कई दृश्य ख़त्म हो गए, लेकिन मार्मिक एवं महत्वपूर्ण स्थल पर ही नाटक खटकता है। बहुत कमज़ोर है। नायक तन-मन से नायिका को चाहता है, नायिका को अपने आलिंगन पाश में आबद्ध किए हुए है। शीराज़ी को हँसी आ रही है। ओह, नायक की कैसी भीषण हुंकार है! एकाएक सब रुक गया! उधर नाट्यकार स्तब्ध होकर खड़े हो गए। धीमी आवाज़ सुनाई पड़ी जैसे बहुत दूर से आ रही हो। नायक पुकार रहा है नायिका को। लेकिन कोई उत्तर नहीं मिलता। यह क्या?—नायिका मर गई? नायक चीख उठा, 'मा—धु—री!'

नाट्यकार ने भी पुकारा, 'सोमनाथ, पानी।'

इतनी देर में सारा नाटक शीराज़ी के लिए पानी हो गया। यह है नाटक! उसका ख़याल था कि न जाने क्या होगा। नाट्यकार कमरे में टहल रहे हैं। टहलना नहीं, इसे तो दौड़ना कहते हैं! इसी नाटक पर इतना नाज़-नख़रा है? वाह री तक़दीर! शीराज़ी ने उठकर एक ग्लास पानी पिया। उसके हलक़ के नीचे जैसे नाटक भी उतर गया।

शीराज़ी का ख़याल हुआ, लड़कियों का मज़ाक बनाने के लिए ही नाट्यकार ने यह नाटक लिखा है। नहीं तो कोई भी लड़की अपने प्रेमी से यह पूछ कर कि, 'कितना प्रेम करते हो, कितना प्रेम करते हो'—उसे पागल बनाती है? ठीक हुआ नायिका का, बुद्धु कहीं की! नायक ने भी अच्छी सीख दी। अच्छा हुआ। अब जीवन में उसे प्रेम का नाम लेने की ज़रूरत नहीं। लेकिन फ़ौरन ही ख़याल हुआ, वास्तव में किसी

लड़की ने नहीं कहा, यह सारी उपज और विचार तो नाट्यकार के हैं।

बस, अब उसकी सारी नाराज़गी और खीझ नाट्यकार पर थी। इच्छा हुई, धड़ धड़ाती हुई जाए और अच्छी तरह से जली-कटी सुना आये। लेकिन, वह तो उसकी नायिका जैसी बेशर्म नहीं है। वह चुपचाप बैठ गई। हाँ, एक कड़ी चिट्ठी भेजने में क्या बुराई है। बेवकूफ़ और ज़ाहिलों का उससे ग़रूर और बढ़ता ही है।

देखूँ। पड़ोसी की बहू बड़ी चंचल है। शीराज़ी खिड़की के सामने खड़ी हो गई। और उसका नौजवान पति भी कम रसिक नहीं है। कमरे में रोशनी जली हुई है, लेकिन अपनी रसिकता में उन्हें जैसे इसका कुछ ख़याल ही नहीं। इन्हें ज़रा भी समझ नहीं। देखने की इच्छा नहीं होती। फ़िर भी बिना झाँके उससे नहीं रहा जाता। दोनों बड़े मज़े में हैं। शीराज़ी ने एक लम्बी साँस छोड़ी।

नाट्यकार की भी शायद एक ऐसी माधुरी देवी हैं। इसमें आश्चर्य या अस्वाभाविक क्या! उस युवती की तक़दीर! शायद उस लड़की को और कोई नहीं मिला।

शीराज़ी का मन न जाने क्यों ख़राब हो गया। वह बिस्तर पर लेट गई और आहत साँप की तरह नाट्यकार पर नहीं, अपने ऊपर नाराज़ होने लगी।

फिर, किसी पर नाराज़ न होते हुए लेटे ही लेटे वह निष्पक्ष भाव से विचार करने की कोशिश करने लगी। अच्छा, नाट्यकार इतनी चहल-कदमी क्यों कर रहे थे? उनके जीवन में क्या ऐसी कोई घटना हुई है? उनका निःस्वार्थ प्रेम पाकर किसी लड़की की शोचनीय मृत्यु हुई है? उस दुर्घटना को सदा स्मरण रखने के लिए ही क्या उन्होंने यह नाटक लिखा है? अगर यह सच है तो वास्तव में शोचनीय है।

लेकिन कुछ देर बाद ही उसकी राय बदल गई। हुश, यह क्या स्वाभाविक है? कभी ऐसा हो सकता है। दरअसल लड़कियों की हँसी

उड़ाई है। शीराज़ी उठी। व्यर्थ समय नष्ट करने से क्या फ़ायदा। अब वह पढ़ेगी।

बिजली जलाकर वह पढ़ने बैठी। लेकिन यह क्या? नाटचकार के कमरे में अन्धेरा है। वह कहीं बाहर गए हैं? घूमने-फिरने या नए नाटक के कथानक की खोज में! किताब खोलकर शीराज़ी ने पढ़ने की कोशिश की। लेकिन पढ़ न सकी। मन ही मन वह नाटचकार पर क्रोधित होने लगी। अजीब आदमी है। विचित्र है।

खा-पीकर वह बहुत रात को ऊपर आई। अब भी उस फ्लैट की बिजली नहीं जली है। मालिक के जाते ही नौकर भी घूमने-फिरने चला गया है? दोनों एक-से हैं। दूसरी तरफ़ भी अन्धेरा है, चंचल बहू भी सो गई है।

शीराज़ी इस समय एकदम अकेली है! कैसे वह वक्त काटे, उसकी समझ में नहीं आता। नींद भी तो उसे नहीं आती। रात को इतनी जल्दी सोना पसन्द नहीं है। कालेज भी जाती है और रात्रि-जागरण भी करती है। यह उसकी पुरानी आदत है।

रात क्रमशः बढ़ रही है। अचानक—'सोमनाथ।'

शीराज़ी ने देखा, नाटचकार लौट आए हैं। दो बजे हैं। इसके मानी? इतनी देर तक कहाँ थे? आधी रात से पहले लौट आने पर शायद नाटचकार नहीं हुआ जाता? पास-पड़ोस के लोग क्या सोचेंगे—समझेंगे? शीराज़ी को बहुत गुस्सा आया। वह सोने की कोशिश करने लगी, उसका सिर भारी-भारी-सा हो रहा है। उसने एस्प्रीन की एक गोली खाई। नहीं, उसे न जाने क्यों कुछ अच्छा नहीं लगता! चारों ओर उसे सूनापन, खाली-खाली लग रहा है। बुखार तो नहीं होगा?

नाटचकार लिखने की मेज़ पर खाना खा रहे हैं। किसी भी बात का शऊर हो, तब न! सब उल्टी बातें हैं। विचित्र हैं। क्या सोचते हैं और क्या करते हैं, यह कुछ समझ में नहीं आता। इतनी रात को घर

लौटने पर उनके बारे में लोग क्या कहेंगे ? गुस्से से शीराज़ी काँपती है। किन्तु उसका क्या लेना-देना ?

शीराज़ी ने आगे बढ़कर देखा। सोमनाथ भी बिलकुल ठूँठ और गँवार है। खाने को तो परोसा है, लेकिन एक ग्लास पानी नहीं दे सकता ?

जाने भी दो। वह लेट गई। उसका शरीर अब आराम चाहता है। लेकिन लेटे रहने पर भी उसे नींद नहीं आ रही है। उसके मन की ऐसी खराब हालत तो पहले कभी नहीं हुई। आज ही ऐसा क्यों हुआ ? वह उठी और खिड़की पर जाकर खड़ी हो गई। चारों ओर अन्धेरा है। अकेली शीराज़ी जाग रही है।

इसके बाद वह कब लेटी और कब उसकी आँखें मुँद गई, उसे पता नहीं। माँ ने जब दरवाज़े की कुण्डी खटखटा कर उसे जगाया, तब काफ़ी देर हो चुकी थी। कालेज जाने का प्रायः वक्त हो गया था। लेकिन वह कालेज नहीं जाएगी, उसकी तबीयत ठीक नहीं।

माँ नीचे चली गई।

"सोमनाथ, सोमनाथ।"

पुकार सुनकर शीराज़ी ने देखा। अरे यह क्या ? कमरे की सारी चीजें बीच में रखी हैं, ढेर लगा हुआ है। सोमनाथ चीजें बाँध रहा है। इसका मतलब ? कहीं और ? कुछ देर तक देख-सुनकर शीराज़ी समझ गई, वाक़ई, नाटचकार कहीं जा रहे हैं, कहीं और। यदि जाना था, तो व्यर्थ के लिए क्यों आए ? न आते तो कोई नुक़सान था ?

खड़ी-खड़ी शीराज़ी देखने लगी। अब नीचे जाने की उसकी इच्छा न रही। अपने सिर पर सामान रखकर सोमनाथ नीचे ले जाता है और फिर ऊपर आता है। नीचे शायद ठेला है, यहाँ से नज़र नहीं आता। आखिरी बार नाटचकार ने कमरे में चारों तरफ़ एक नजर दौड़ाई और हाथ की छड़ी नचाते हुए नीचे उतर गए।

शीराज़ी अचल खड़ी रही। उसका सारा शरीर जैसे बहुत भारी हो गया। सिर भी फिर झनझनाने लगा। पड़ोसी की बहू गालपर हाथ रखे अकेली खड़ी है। उसका पति शायद दफ्तर चला गया है?

शीराज़ी को अब जैसे बहुत काम है। सब बातों में उससे ग़लती हो रही है। नहीं, वह कुछ भी नहीं समझ सकी। सब मानो कैसा-कैसा हो गया। गुस्से में खिसियानी होकर नाट्यकार पर वह जलने लगी।

बात गुप्त थी। लेकिन शादी के दूसरे दिन ही ज़ाहिर हो गयी। पता भी चला उस वक्त, जब उसका कोई प्रतिकार नहीं किया जा सकता था।

कल्याणी के मन में खटका था। लेकिन विश्वास नहीं हुआ। जो यथार्थ था, उसे मानने को वह तैयार न थी।

अन्त में मानना ही पड़ा। इस झूठ, फ़रेब और दग़ा के खिलाफ़ वह विद्रोह न कर सकी। स्तम्भित रह गयी। इतने ज़बरदस्त धक्के की उसने कभी कल्पना भी नहीं की थी।

जिन्होंने उसे धोखा दिया, उसका जीवन खिलने से पहले ही उसे रौंद दिया, उन्हें खरी-खोटी सुनाने की हिम्मत भी उसमें न रही। उफ़! ऐसा धोखा! वह सहन नहीं कर सकती। कल्याणी अँधेरे में जैसे एकदम खो गयी।

अब इस घर का कोई भी व्यक्ति उसे नहीं सुहाता। नहाने के बहाने वह बहुत देर से बाथरूम में घुसी बैठी है। वह नहाई नहीं है। खिड़की पर झुकी हुई एकटक बाहर देख रही है।

सामने सड़क है और उसके दोनों ओर मकान। और ऊपर, नीले आकाश में, असंख्य तारों की माला और मृत्यु जैसी निस्तब्धता। कल्याणी की आँखों में आकाश उतर आया है, शरीर थका हुआ और मन में काली घटाएँ छायी हैं।

एकाएक किसी ने दरवाज़ा खटखटाया। कल्याणी चौंकी। लेकिन जवाब नहीं दिया। इस घर के किसी व्यक्ति की छाया भी वह नहीं देखना चाहती। विचित्र है उसका निष्क्रिय विद्रोह। कोई भाषा नहीं, कोई प्रकाश नहीं—सिर्फ़ सचेत मन की अचेत अनुभूतियों को जला रही है।

कई बार कुण्डी खटखटाने पर भी जब कोई जवाब नहीं मिला, तब कल्याणी की सास विमला देवी ने पुकारा—'बहूरानी!'

कल्याणी ने चुपचाप दरवाज़ा खोल दिया।

कुछ चकित होते हुए उन्होंने कहा, 'तुम अब तक नहीं नहायीं?'

कल्याणी ने कोई जवाब नहीं दिया। घूँघट की ओट में स्वयं को छिपाने की चेष्टा करने लगी।

तीक्ष्ण दृष्टि से कल्याणी को देखकर विमला देवी ने एक लम्बी साँस छोड़ी। खामोशी में ही कुछ क्षण बीत गये।

विमला देवी को जैसे होश आया। प्यार से बोलीं, 'मैं छत पर जा रही हूँ। नहाकर तुम ज़रा ऊपर आना।' इसके बाद उन्होंने और कुछ नहीं कहा, किवाड़ भेड़कर चली गयीं।

कल्याणी अपनी सास के आदेश की उपेक्षा न कर सकी। जल्दी से हाथ-मुँह धोकर छत पर चली गयी।

विमला देवी बहुत कुछ कहने के लिए तैयार थीं। लेकिन जब कल्याणी की उदास और मुर्झायी हुई सूरत पर नज़र पड़ी, तो उनके मुँह से एक शब्द भी नहीं निकला। कल्याणी कुछ देर चुप रही। फिर बोली, 'मुझे आपने बुलाया था न, माँजी ?'

विमला देवी चौंकीं। कल्याणी के मुँह की ओर वे अच्छी तरह से न देख सकीं। अपराध से उनका मुँह सूख गया। अनुभव हुआ कि सब-कुछ जानते-समझते हुए उन्होंने एक निर्दोष लड़की का सर्वनाश किया है। इस पाप का प्रायश्चित्त भी नहीं है।

उन्होंने एकाएक कल्याणी को अपनी गोद में खींच लिया और रोने लगीं।

कल्याणी भी घबड़ा गयी। उसे यह आशा न थी। अपनी ससुराल में वह सिर्फ़ सास को ही अच्छा समझती है। लेकिन इस बात की आशा नहीं थी। उसके मन में विष का जो धुआँ इकट्ठा हो रहा था, वह सास के आँसुओं में निकलने लगा।

कल्याणी के माथे को अपने सीने से लगाकर उन्होंने कहा, 'बेटी, जो पाप मैंने किया है, उसकी सज़ा नहीं है। माफ़ी माँगने का भी मुँह नहीं।'

कल्याणी क्या जवाब दे। उसकी ज़िन्दगी को इन लोगों ने बर्बाद कर दिया है। चन्द्र और सूर्य की तरह यह सत्य है। ससुरालवालों से वह चाहे कितनी ही नाराज़ क्यों न हो, लेकिन सास को दूर न हटा सकी। उनकी गोद में उसने अपने को छोड़ दिया।

विमला देवी ने रुआँसी आवाज़ में कहा, 'अगर उस दिन तुम्हें देखने न जाती, तो शायद तुम्हारा इतना नुक़सान न करती। तुम्हें देखकर न जाने क्यों यह ख़याल हुआ कि तुम्हारे आने से मेरा लड़का अच्छा हो जायगा।'

कल्याणी की इच्छा हुई कि कहे, आपके ख़याल ने तो मेरी सारी ज़िन्दगी ही बर्बाद कर दी। लेकिन उसने कुछ नहीं कहा। अपने उत्तेजित मन को शान्त करने लगी।

वे कहती गयीं, 'हमारे पास धन-दौलत है, इज्ज़त है—सिर्फ़ नहीं है शान्ति। तुम बेटी, अभी माँ नहीं बनी हो। इसलिए मेरा दुःख नहीं समझ सकतीं। पागल बेटे के लिए हमेशा कितनी चिन्ता और फ़िक्र रहती है। मैं चाहती थी कि उसकी देखभाल करनेवाला कोई हो। बेटे की ममता ने मुझे इतना अन्धा और स्वार्थी बना दिया कि तुम पर क्या बीतेगी, इसका मैंने कुछ ख़याल ही नहीं किया।'

कल्याणी अब और चुप न रह सकी। कुछ कटु आवाज़ में बोली, 'धोखा देने से तो अच्छा था कि शादी के पहले ही यह बात बता दी जाती; क्यों माँ जी?'

'इसी बात का तो दुःख मुझे खाये जाता है, बेटी! स्वार्थ में अन्धी होकर तुम्हें जो धोखा और दुःख दिया है, उसका कोई प्रतिकार मुझे नज़र नहीं आता। मेरे मरने के बाद राजेश का क्या होगा, यही सोच-सोच कर मरी जाती थी।'

'मैं उनकी रक्षा कैसे कर सकती हूँ?'

'तुम ज़रूर कर सकती हो। स्त्री सब कुछ कर सकती है। जब तुम आ गयी हो, तो अब राजेश असहाय नहीं है। भाइयों का स्वार्थ उसको नुक़सान नहीं पहुँचा सकेगा। उसे दर-दर की ठोकरें नहीं खानी होंगी।'

'मैं दूसरे की लड़की हूँ, इसलिए मेरी आशा-आकांक्षा और सुख-दुःख के बारे में आपने कुछ नहीं सोचा। और अगर सोचा भी, तो परवाह

नहीं की। लेकिन मेरी समझ में यह नहीं आता कि जो पागल हैं, उन्हें भला मैं कैसे अच्छा कर सकती हूँ ? उन्हें मैं कैसे रोकूँगी ?'

'न जाने क्यों मेरा यह दृढ़ विश्वास था कि शादी के बाद राजेश अच्छा हो जायगा। ठीक हो जायगा, दूसरे लोगों ने भी यही कहा था।'

'लेकिन क्या किसी ने यह नहीं बताया कि शादी के बाद वे अच्छे न होकर और भी ज्यादा पागल हो सकते हैं ?'

'शक तो हुआ था बेटी, पर मैंने विश्वास नहीं करना चाहा। सब कुछ समझते-बूझते हुए भी आश्रय ढूँढ़ना ही मेरा एकमात्र उद्देश्य था।' कल्याणी का हाथ अपने हाथ में लेकर विमला देवी ने अनुरोधके स्वर में कहा, 'तुम्हारे साथ जो बेइन्साफ़ी की है, उसकी तुलना नहीं। लेकिन बेटी, क्या तुम माँ को किसी भी तरह माफ़ नहीं कर सकतीं ?'

एकाएक कल्याणी की छोटी ननद नीला दौड़ती हुई छत पर आयी। बोली, 'माँ-माँ—जल्दी चलो !'

विमला देवी ने डरते हुए पूछा, 'क्यों री, क्या हुआ ?'

'बड़े भैया तालाब में डूबने गये थे। कुछ लोगों ने देख लिया और जबरदस्ती पकड़कर यहाँ पहुँचा गये हैं।'

विमला देवी नीचे दौड़ीं, साथ-साथ नीला भी। कल्याणी ने सोचा, वह नहीं जायगी। लेकिन बैठी न रह सकी। अपने आप ही नीचे की तरफ़ पैर बढ़ गये।

नीचे तो जैसे लंकाकाण्ड हो रहा था। अकेले राजेश को तीन-चार आदमी शान्त नहीं कर पा रहे थे। छोटा भाई हरीश जब अपना ग़ुस्सा न रोक सका, तो उसने राजेश के तीन-चार घूँसे लगाये।

कल्याणी आगे बढ़ रही थी। फिर ठहर गयी। शर्म से, अपमान से जैसे वह गड़ गयी। उसने कभी यह सोचा भी नहीं था कि इतने बड़े भाई को और वह भी पागल को कोई इतनी बेरहमी से मार सकता है।

वह कुछ दूर ऐसे हट गयी, जैसे उसने कुछ नहीं देखा है।

विमला देवी ने क्रुद्ध होकर कहा—"खबरदार, जो बड़े भाई पर हाथ उठाया—हज़ार बार मना किया है, तो भी—'

'मारूँ नहीं तो क्या पागल को सिर पर बिठाकर नचाऊँ?' हरीश ने ज़ोर-ज़ोर से हाथ मटकाकर कहा—'पागल की सज़ा ही है मार। आज इसे ठीक करके ही छोड़ूँगा—इसके मारे हमारे नाक में दम है।' हरीश ने फिर राजेश का हाथ पकड़कर खींचा और उसकी कनपटी पर ज़ोर से एक घूँसा जमाया। बोला, 'चल, तुझे कोठरी में बन्द कर देता हूँ।'

विमला देवी ने आगे बढ़कर राजेश को अपने पास खींच लिया। माँ को देखकर राजेश ने कोई प्रतिवाद नहीं किया, चुपचाप उनके साथ हो लिया।

राजेश का यही स्वभाव है। अचानक उसे पागलपन सवार होता है। फिर उसे कोई शान्त नहीं कर सकता। लेकिन कुछ देर बाद एकाएक वह शान्त हो जाता है। जब वह शान्त रहता है, तो कोई उसे पागल नहीं बता सकता। साधारण मनुष्यों की तरह ही रहता है। लेकिन हाँ, वह किसी से भी ज्यादा बातचीत नहीं करता। अकेला बैठा हुआ चुपचाप न जाने क्या सोचता रहता है। प्रश्न करने पर कोई जवाब नहीं देता। मुँह देखने पर ऐसा मालूम होता है कि वह इतनी गम्भीरता के साथ जो कुछ सोचता है, वह उसके दिमाग में नहीं रहता।

कमरे में खामोशी थी। जान-बूझकर ही कल्याणी दबे पैरों कमरे में घुसी। वह कभी ऐसे प्रवेश नहीं करती है। कभी भी पति के साथ एक बिछौने पर नहीं सोती। पति जब सो जाता है, तब वह कमरे में आती है और अलग बिस्तर पर सोती है। जिस दिन राजेश को पागलपन सवार रहता है, उस दिन कल्याणी दूसरे कमरे में सोती है।

राजेश से वह सिर्फ़ दूर-दूर ही नहीं रहती, बल्कि डरती है। उसे देखते ही डर से काँप जाती है। दुःख भी होता है और गुस्सा भी आता है।

राजेश सोया नहीं था। अचानक कल्याणी को देखकर बोला, 'कौन बहू?'

कल्याणी चौंकी। उसका मन फिर एक बार कटु हो गया।

'सुनो रानी, इधर आओ।'

कल्याणी ने कोई जवाब नहीं दिया।

'आओ रानी, मैं बकवास नहीं करूँगा और न तुम्हें मारूँगा ही—सच कहता हूँ! तुम बहू हो न—तुमसे भला मैं कुछ कह सकता हूँ?'

कल्याणी को कुछ हँसी आयी। दाँतों से होठ दबाकर धीरे-धीरे आगे बढ़ी और पति के निकट आकर खड़ी हो गयी।

कल्याणी का हाथ पकड़ कर राजेश ने अपनी कनपटी में लगाया। बोला, 'ज़रा यहाँ हाथ से सहला दो बहू! देखो, कितने ज़ोर से मारा है।'

कनपटी सूज गयी थी। कुछ आहत स्वर में कल्याणी ने कहा, 'किसने मारा?'

'हरीश! छोटा भाई होकर—'

कल्याणी के कलेजे में जैसे तीर चुभा। कुछ देर चुप रहकर बोली, 'तुम क्यों बर्दाश्त करते हो?'

'मैं!' खिसियानी हँसी हँसते हुए राजेश ने उत्तर दिया—'मैं क्या कर सकता था? मुझे दूसरे लोगों ने पकड़ जो रखा था।'

कल्याणी से कुछ न कहा गया। चुपचाप हाथ से वह सहलाती रही।

राजेश ने फिर कहा, 'मैं तो खुद लोगों से दूर रहता हूँ, लेकिन लोग ही मुझे छेड़ते हैं, चिढ़ाते हैं। पहले तो मैं कुछ नहीं कहता, लेकिन फिर गुस्सा आ ही जाता है।'

कल्याणी ने कहा, 'अच्छा, तुम ज़रा ठहरो। मैं टिंक्चर और रूई लाती हूँ। ओफ़ बहुत सूज गया है।'

विमला देवी के पास पहुँचकर कल्याणी ने टिंक्चर माँगा।

उन्होंने पूछा, बेटी, इतनी रात में टिंक्चर का क्या काम?'

कल्याणी ने देखा कि सामने हरीश खड़ा है। जो कुछ कहना चाहती थी, कह न सकी। बोली, 'उनकी कनपटी सूज गयी है।'

विमला देवी टिंक्चर आयडीन निकालने लगीं।

हरीश ने व्यंग किया, 'क़िस्मत तेज़ थी, जो सिर्फ़ सूजा ही है। किसी दिन ऐसा पिटेगा कि फिर नहीं उठेगा। कितनी बार कहा है, हथकड़ी-बेड़ी पहनाकर रखो, लेकिन कौन सुनता है। उस पागल जानवर के लिए इतना दर्द क्यों?'

विमला देवी ने डाँटा, 'चुप रह! सगा भाई होकर क्या बकता है?'

'तुम्हारे इस लाड़-प्यार ने ही तो चौपट किया। कहा, राँची भेज दो और नहीं कोठरी में बन्द करके रखो, ताकि हमें भी चैन मिले और पास-पड़ोसियों को भी। एक दिन जब खूब अच्छी तरह मरम्मत होगी, हड्डी-पसली टूटेगी, तब पागलपन दूर होगा।'

कल्याणी का खून गर्म हो गया। अब वह आत्म-संयम न रख सकी। क्रुद्ध दृष्टि से देखते हुए कहा, 'क्या कहा?'

'यह लो रूई और आयडीन'—विमला देवी ने आगे बढ़कर शीशी दी।

जवाब सुनने के लिए कल्याणी खड़ी नहीं रही, शीशी लेकर चली गयी।

'आ गयीं रानी?' राजेश बोला, 'मैं सोच रहा था कि शायद अब तुम नहीं आओगी'।

आयडीन लगाते-लगाते वह बोली, 'सुनो, अब किसी से मत लड़ना-झगड़ना।'

'मैं तो सबसे दूर रहता हूँ, जान-जान कर लोग छेड़छाड़ करते हैं।

'अच्छा, तो अब तुम कहीं बाहर मत जाया करो।'

'कहीं भी नहीं?'

'नहीं।'

'और अगर जाऊँ—तो ?'

'तो फिर मैं तुमसे कभी नहीं बोलूंगी।'

'अच्छा, अब मैं कभी बाहर नहीं जाऊँगा।'

'याद रहेगा न ? कभी भी बाहर नहीं जाओगे। छत पर घूमो, बग़ीचे में टहलो और बाहर घूमने जाना हो, तो मेरे साथ चलना।'

'तुम्हारे साथ ? तुम मुझे अपने साथ ले जाया करोगी ?.... मज़ाक़ करती हो।'

'मज़ाक़ नहीं, सच कहती हूँ। प्रतिज्ञा करो कि तुम हरीश के कमरे में कभी नहीं जाओगे।'

'क्यों ?'

'वह तुम्हें नहीं देख सकता। तुम्हें अकेला पाकर मारेगा।'

'अच्छा, तुम कहती हो,तो अब नहीं जाऊँगा—तुम्हारी बात ही सही।'

'कहीं नहीं जाओगे न ? हमेशा मेरे पास रहोगे ?'

'हाँ।'

'क्यों—?'

'क्योंकि दूसरे लोग मुझे मारते हैं, चिढ़ाते हैं। तुम न मुझे मारती हो, न छेड़ती हो।'

'और !'

'और प्यार करती हो।'

'मैं तुम्हें प्यार करती हूँ, किसने कहा ?'

'मुझे मालूम है।'

'तुम जानते हो ? समझते हो ?'

कल्याणी जाने कैसी हो गयी। धीरे-धीरे राजेश के सीने पर अपना माथा रखते हुए अस्फुट स्वर में उसने कहा—'तुम जानते हो, मैं तुम्हें चाहती हूँ, प्यार करती हूँ ?'

राजेश भी न जाने कैसा हो गया। मन्त्रमुग्ध की तरह ही उसने कल्याणी को छाती से लगा कर उसका चुम्बन किया। चुम्बन करने के बाद ही राजेश डर गया, क्षण भर के लिए उसकी सारी शक्ति जैसे शिथिल हो गयी।

कल्याणी चौंकी, खयाल हुआ, आज की रात ही क्या अन्तिम रात है? अगर आखिरी रात है, तो क्या यह रात अनन्त नहीं हो सकती?

मॉर्गन, मॉर्गन एण्ड मॉर्गन कम्पनी के जूट डिपार्टमेंट के बड़े मुन्शी रामलोचन श्रीवास्तव हैं।

सफेद फुल-पैंट पर काली अचकन, पैरों में कील लगे हुए बूट जूते, सिर पर टेढ़ी काली टोपी और हाथ में छड़ी या छाता। एक जेब में जर्मन-सिलवर की किताबनुमा डिब्बी,

जिसमें उनकी टिफिन रहती है। दूसरी जेब में पत्नी पान की डिबिया रख देतीं।

मुन्शीजी ने अभी अधेड़ अवस्था पार की है। कुछ दिनों में बुढ़ापा आ जायगा। पॉलिश किये हुए जूते की तरह उनकी गंजी खोपड़ी चमचमाती रहती है और उसके चारों ओर छोटे-छोटे अधपके बाल।

मैंने जब से होश सँभाला है, इनको बराबर इसी रूप में देखा है। ऐसा लगता है, जैसे अधेड़ अवस्था के बाद उनकी उम्र का बढ़ना रुक गया है। जैसे वे कभी बालक या युवा न थे, और वृद्ध भी होंगे या नहीं, यह कौन कह सकता है। रामलोचन और ताजमहल में कोई फर्क नहीं है।

हर रोज ठीक साढ़े नौ बजे हाथ में पान की डिबिया दबाये और हनुमान चालीसा का पाठ करते हुए रामलोचन अपने घर से निकलते हैं और शाम को छह बजे वापस आते हैं। ऑफिस पहुँचते ही सबसे पहले वे अपने हाथ की छड़ी या छाते को खूटी पर टाँग देते और फिर लाल स्याही से एक कागज पर 'श्रीजानकीवल्लभ' लिखकर अपना दैनिक कार्य शुरू करते थे। अपने निम्नस्थ कर्मचारियों से जहाँ तक सम्भव था, वे बहुत कम बातचीत करते और न ही उन लोगों ने मुंशीजी को कभी हँसते देखा था। प्रतिदिन जैसे सूर्योदय होता है, वैसे ही मुन्शीजी के सब काम नियमित रूप से होते थे, उनका खाना-पीना, उठना-बैठना, पूजा-पाठ इत्यादि।

रामलोचन के परिवार में उनकी पत्नी मंजुला थीं, एक काली बिल्ली और एक बहुत पुराना नौकर जगदीश। बस, यही उनकी गृहस्थी थी। निस्संतान थे।

रामलोचन, जिनकी शक्ल बंदर से मिलती-जुलती थी—उनके जीवन में भी एक दिन परिवर्तन हुआ—सिर्फ एक दिन के लिए ही।

हर रोज की तरह उस दिन भी वह ठीक वक्त पर ट्राम में सवार हुए। उनकी सीट के ठीक सामने दो किशोर वयस्क लड़के बैठे थे।

वे आपस में खूब हँसी-मजाक कर रहे थे। गप्पें लड़ाते-लड़ाते अंत में उनमें से एक ने ऐसा चुटकुला सुनाया जो आस-पास बैठे हुए दूसरे मुसाफिरों ने भी सुना और सब के सब खिलखिला कर हंस पड़े। और तो और, हमारे मुन्शी जी भी हँस पड़े। उनकी लम्बी और घनी मूंछों के बीच नकली दाँत चमक उठे, काले बादलों में जैसे बिजली की चमक। उन लड़कों का वह चुटकुला उन्हें बेहद पसंद आया।

ऑफिस में मुन्शीजी बदस्तूर काम कर रहे हैं। पहले कुछ कागजों पर दस्तखत करने थे। हाथ में कलम पकड़े वे कुछ देर तक अन्यमनस्क रहे। कलम की स्याही सूख गयी, लेकिन दस्तखत नहीं हुए। उनके दिमाग में उस वक्त वह चुटकुला घूम रहा था। रह-रहकर उन्हें उसकी याद आती थी और वे खुद ही हँस पड़ते थे।

उसी वक्त डिस्पैच क्लर्क कुछ पूछने आया। डिस्पैचर को देखते ही मुंशीजी और जोर से हँस पड़े।

'अरे, अरे गिरिधारी, यह क्या—कुर्ते पर कोट पहना है···'

हो हो हो, हा हा, ही ही !

"मैं मुन्शीजी, मुन्शीजी मैं,. .' कहते-कहते गिरिधारी चुप हो गया। वह तो हर रोज ही कुरते पर कोट पहन कर आता है। मुन्शी को यह पूछने की जरूरत ही क्या थी, और अगर पूछा भी, तो इस तरह हँसने की क्या बात थी ? यह असम्भव सम्भव कैसे हुआ ?

उस दिन जैसे सब कुछ ही उलट-पुलट हो गया। काम करते-करते पहले तो मन्द मुस्कान और फिर धीरे-धीरे वे मन-ही-मन जोर से हँसने लगे।

एक क्लर्क ने स्पेलिंग गलत लिखी थी। अगर कोई दूसरा दिन होता, तो उस गरीब क्लर्क की खैर न थी। लेकिन आज मुन्शीजी ने कहा, 'अरे भाई सुरेश, यह तुमने क्या लिखा है ? हा हा, ही ही हो हो'—हँसते-हँसते वे कुर्सी पर लोट-पोट हो गये। बड़ी मुश्किल से अपनी हँसी रोकते

हुए बोले, 'फिर से लड़कों के साथ स्कूल में नाम···' कहते-कहते उनकी हँसी का बाँध टूट पड़ा और बात पूरी नहीं हुई।

उस रोज पाँच बजने से कुछ पहले ही वे ऑफिस से चल दिये। ऐसा मजाकिया चुटकुला पत्नी को सुनाये बिना उनसे न रहा गया। ट्राम में देर लगेगी, यह खयाल कर उन्होंने अपना सदा का नियम तोड़ा और बस में सवार हुए। लेकिन अपने मकान की चौखट पर पैर रखते ही रामलोचन वह चुटकुला भूल गये, अनजाने ही।

मकान में पहुँचकर जब उन्हें वह चुटकुला याद न आया, तो वे बहुत बेचैन हो उठे। ऑफिस से लौटकर उनके दैनिक कामों में क्रमशः भूल हुई। नकली दाँत साफ करने की याद न रही। हाथ की छड़ी खूँटी पर न टाँगकर कुर्सी पर ही पटक दी। जूते उतारकर मोजे पहने हुए और अपने दोनों हाथों को पीछे करके कमरे में चहलकदमी करने लगे। उस चुटकुले को याद करने की उन्होंने लाख कोशिश की, पर कम्बख्त याद ही न आया।

उनकी पत्नी मंजुला ने यह हाल देखा तो घबरा गयी। ऐसा तो कभी नहीं हुआ। कहीं दफ्तर में तो कोई ऐसी-वैसी बात नहीं हो गयी। भगवान जाने क्या हुआ। डरते-डरते उसने एक बार पूछा 'क्यों, क्या बात है?' प्रश्न सुनते ही मुन्शीजी उसे मारने दौड़े। नहीं, कुछ भी तो नहीं हुआ। सब लोग उन्हें क्यों खामख्वाह तंग कर रहे हैं?

कुछ भी हुआ हो। उसने बैठने के लिए पट्टा दिया और जलपान की तश्तरी आगे बढ़ाते हुए अश्रु-नेत्रों से भयभीत स्वर में मंजुला ने कहा, 'सुनते हो, तुम्हें मेरे सिर की कसम, जो सच-सच न बताओ—क्या हुआ? मुझे न जाने क्यों डर लग रहा है।

मुन्शीजी कुछ देर चुप रहे। फिर बोले, 'तुम्हें एक बड़ा मजेदार चुटकुला सुनाने के इरादे से तो मैं जल्दी-जल्दी घर आया, लेकिन मकान

में दाखिल होते न होते ही मैं वह चुटकुला भूल गया। और अब हरचंद कोशिश करने पर भी वह याद नहीं आ रहा है।'

'ओ हो, यह बात है! मै समझी, न जाने क्या हो गया! मैने तो हनुमानजी को सवा रुपये का प्रसाद भी बोल दिया था।' यह कहकर मंजुला हँस पड़ी---हँसते-हँसते जमीन पर ही लेट गयी।

पत्नी को हँसती हुई देखकर मुन्शीजी बहुत नाराज हुए। क्यों नाराज हुए, यह बताना मुश्किल नहीं है। अपनी पत्नी को हँसाने के लिए ही तो उन्हें इतनी मानसिक तकलीफ उठानी पड़ रही है और पत्नी ने इसकी गम्भीरता ही न समझी। पके हुए टमाटर की तरह वे गुस्से में फट पड़े। पत्नी से खूब लड़े। विवाहित जीवन में यह पहली लड़ाई थी।

रात को खाना खाने के बाद वे लेटे, लेकिन दिमाग से चुटकुले की बात हटती ही नहीं थी। इसलिए नींद नही आयी। मुन्शीजी को अपने ऊपर ही बहुत क्रोध आया। उन्होंने तो सोचा था कि अपनी अर्द्धांगिनी को खूब हँसायेंगे और हँसेंगे, और कहाँ हँसाने के बदले उन्होंने उसे खूब रुलाया, यह सोचते-सोचते ही उन्हें नींद आ गयी।

मंजुला ने कमरे में प्रवेश कर पति को सोये हुए देखा तो वह खुश हो गयी और शाम के झगड़े की याद करके मन-ही-मन लज्जित हुई। फिर, पलँग के एक कोने में पड़कर सो गयी।

उधर कुछ देर बाद मुन्शीजी की नींद खुल गयी और वे बिस्तरे पर उठकर बैठ गये। उन्होंने उस चुटकुले को स्वप्न में यथार्थ रूप में देखा था। उनकी इच्छा हुई कि पत्नी को अभी जगाकर वह चुटकुला सुना दें। बेड-स्विच दबाकर उन्होंने देखा कि एक कोने में पड़ी हुई उनकी पत्नी गहरी निद्रा में मग्न है।

चुटकुला याद आ जाने की वजह से वह इतने ज्यादा खुश हुए कि प्रायः बीस साल बाद उन्होंने अपनी पत्नी का नाम लेकर पुकारा, 'मंजुला,

मंजू, मंजू।' मंजुला गहरी नीद में बेहोश थी। जब वह न जगी, तो मुन्शीजी ने सोचा—अच्छा, अभी बेचारी को आराम से सोने दो। मैंने फिजूल ही इसे बहुत भला-बुरा कहा। खैर, अब कल सुबह ही सुना दूँगा। यह सोचते हुए वे एक बार फिर हँस पड़े और करवट बदलकर सो गये।

उस वक्त उनका मन शांत था, प्रसन्न था, इसलिए फौरन ही आँखें लग गयीं।

दूसरे दिन सुबह जब मार्गेन, मार्गेन एण्ड मॉर्गेन कंपनी के बड़े मुन्शी रामलोचन सोकर उठे, तो फिर उन्हें वह चुटकुला याद न रहा, भूल गये थे।